इकाई 10 महादेवी वर्मा की प्रतीक योजना

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 प्रतीक : अर्थ और उसकी परंपरा
10.3 प्रतीक की आवश्यकता
10.4 महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतीक योजना
10.5 महादेवी के प्रतीकों के विभिन्न प्रकार
  10.5.1 प्रकृति से उठाए गए प्रतीक
  10.5.2 आध्यात्मिक प्रतीक
  10.5.3 साधनात्मक प्रतीक
  10.5.4 परम्परागत प्रतीक
  10.5.5 सौन्दर्यपरक प्रतीक
  10.5.6 वेदना प्रधान प्रतीक
  10.5.7 भावनात्मक प्रतीक
  10.5.8 आत्मचेतना संबंधी प्रतीक
10.6 महादेवी द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के चार वर्ग
  10.6.1 मूर्त के लिए मूर्त प्रतीक
  10.6.2 अमूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक
  10.6.3 मूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक
  10.6.4 अमूर्त के लिए मूर्त प्रतीक
10.7 महादेवी के प्रतिनिधि और प्रिय प्रतीक
10.8 सारांश
10.9 प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको महादेवी वर्मा की प्रतीक योजना के विषय में बताएँगे, जिसे पढ़ने के बाद आप यह समझ सकेंगे कि प्रतीक का क्या अर्थ होता है और इसे किस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। आपको इस इकाई में यह भी समझने का अवसर मिलेगा कि प्रतीक की आवश्यकता सामान्य रूप से साहित्य में क्यों पड़ती है। महादेवी वर्मा के संदर्भ में प्रतीक क्यों आवश्यक रहे हम इसकी भी जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप महादेवी वर्मा के काव्य में आए विभिन्न प्रतीकों, उनके वर्गीकरण, उनके विविध रूपों का विवेचन कर पाएँगे। आप यह भी बता पाएँगे कि महादेवी वर्मा ने अपनी कविताओं में किन प्रतीकों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया है।

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने महादेवी वर्मा की काव्य संवदेना के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। उस इकाई में हमने छायावाद युगीन पृष्ठभूमि में महादेवी वर्मा की रचनाओं में प्राप्त भावगत सौंदर्य पर दृष्टिपात किया। हमने उनके कवि-दार्शनिक रूप को देखा और उनकी कविताओं में उनकी आध्यात्मिक जीवनदृष्टि के दर्शन किए। हमने महादेवी के काव्य में प्रणय-भाव और सौंदर्यानुभूति का अनुशीलन करते हुए उनके समग्र काव्य लोक की विस्तृत विवेचना की। हमने इन अनुभूतियों से संबंधित उदाहरणों में देखा कि महादेवी वर्मा कतिपय कारणों से अपने भावों को अप्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्ति देती हैं। इसके लिए उन्होंने विभिन्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष आलम्बनों का सहारा लिया। इस इकाई में हम इन्हीं प्रतीकों का विधिवत, विशद अध्ययन करेंगे।

सबसे पहले हम प्रतीक के अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे। प्रतीक क्या होता है। हम इसकी व्याख्या करेंगे। हम यह भी देखेंगे कि विभिन्न विद्वानों ने प्रतीक को किस प्रकार परिभाषित किया है। हम प्रतीक की परंपरा पर भी सरसरी दृष्टि डालेंगे।

प्रतीक का अर्थ, इसकी परिभाषा समझने के बाद हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि साहित्य रचना में प्रतीक की आवश्यकता क्यों होती है। इसकी उपस्थिति-अनुपस्थिति किसी कृति अथवा पंक्ति में क्या महत्वपूर्ण अंतर उत्पन्न कर सकती है? हम प्रतीक की सामान्य आवश्यकता का आकलन करने के साथ, महादेवी वर्मा के संदर्भ में भी इस बिंदु पर विचार करेंगे। हम देखेंगे कि महादेवी के काव्य में प्रतीकों की प्रचुरता का क्या कारण है।

महादेवी वर्मा में प्रतीक की आयोजना के महत्वपूर्ण तत्वों पर प्रकाश डालते हुए, इस इकाई में हम उनकी कविताओं में प्राप्त प्रतीकों के विभिन्न वर्गों तथा रूपों का विवेचन करेंगे। महादेवी वर्मा ने कुछ प्रतीकों का बार-बार प्रयोग किया है, कुछ प्रतीकों से उनका विशेष लगाव रहा है, हम इन प्रतीकों का अलग-अलग अध्ययन करेंगे। आइए, हम प्रतीक के विषय में जानें।

10.2 प्रतीक : अर्थ और उसकी परंपरा

शब्द दो प्रकार के होते हैं : (i) वाचक शब्द, और (ii) प्रतीकात्मक शब्द। वाचक शब्दों का संबंध केवल अभिधा शक्ति से होता है, जबकि प्रतीकात्मक शब्दों का संबंध लक्षणा और व्यंजना से होता है। स्पष्ट है, कविता में सौंदर्य की निर्मिति हेतु प्रतीकात्मक शब्द विशेष महत्व रखते हैं। प्रतीकात्मक शब्द वस्तुतः ऐसे शब्द होते हैं जो मूल से भिन्न होते हुए भी उसका बोध कराते हैं। प्रतीक ऐसे शब्द होते हैं जो सूक्ष्म, अमूर्त अथवा अप्रत्यक्ष भाव को स्पष्ट, मूर्त और प्रत्यक्ष कर देते हैं। उदाहरण के लिए, महादेवी वर्मा से ही एक उद्धरण लीजिए - 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल'। यहाँ दीपक का प्रयोग कवयित्री ने प्रतीक के रूप में किया है और उसका अर्थ यहां साधारण प्रकाश स्रोत न होकर 'जीवन' है। प्रतीक की कुछ परिभाषाएँ देखिए :

> 'एक शब्द में ही अनेकानेक भावों को अभिव्यक्ति प्रतीक का निर्माण करती है।' (डॉ0 रामकुमार वर्मा) 'प्रतीक वह संकेतात्मक चिह्न है जो किसी गूढ़ एवं सूक्ष्म भाव या विचार का अर्थ प्रतिपादन करने के लिए स्वेच्छापूर्वक या परंपरागत रूप में प्रयुक्त होता है।' (कृष्णकुमार गोस्वामी) 'प्रतीक भाषा की बहुत बड़ी शक्ति है। जब भी भाषा अपनी अनुभूतियों के प्रकाशन में अपने आपको असमर्थ पाती है तब प्रतीक ही इस अभाव की पूर्ति में सक्षम होते हैं।' (डॉ0 मनोरमा शर्मा)

'केवल मानव के प्रत्यक्ष तथा कल्पना के क्षेत्र में आने वाले विचारों, भावों और अनुभूतियों के दृश्य या श्रव्य संकेत या चिह्न प्रतीक कहलाते हैं। (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन ऐंड एथिक्स) प्रतीक की परंपरा भी कोई नई नहीं है। पाश्चात्य प्रतीकवादियों की यह मान्यता थी कि 'तुच्छ दैनिक वस्तुओं का यथावत चित्रण' नहीं करके यदि उन्हें प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए तो इस प्रकार उन्हें महत्ता प्रदान की जा सकती है। फ्रांस में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में और इंगलैंड में बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में प्रतीकवाद अत्यधिक प्रचलन में रहा। फ्रांस में जहां बोदलेयर से मॉलार्मे तक इसकी परंपरा गई, वहीं इंग्लैंड में जॉर्ज मूर, ऑस्कर वाइल्ड, एमंड गौस और ऐट्स ने प्रतीक को साहित्य में प्रतिष्ठित स्थान दिया।

हमारे यहां भी प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से होता रहा है। भारतीय साहित्य में प्रतीक विधान की परंपरा बहुत पहले से मिलती है। साहित्य मनीषी वैदिक साहित्य और उपनिषद काल की रचनाओं में प्रतीकों की उपस्थिति बताते हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत, पुराण, नागपंथी हठयोगियों की बानियों, अमीर खुसरों की मुकरियों, तथा विद्यापति, सूर, कबीर, निराला और प्रसाद तक में प्रतीकों का प्रयोग देखने को मिलता है। किंतु, यहां उल्लेखनीय बात यह है कि भारतीय साहित्य में प्रतीक प्रयोग को मात्र एक साधन माना गया, साध्य नहीं।

महादेवी में आकर प्रतीक को एक सिद्ध शिल्पी मिला। महादेवी ने माया के लिए 'दर्पण' और आत्मा के लिए 'दीपक' जैसे प्रकृति से इतर प्रतीकों का प्रयोग किया। आगे हम महादेवी की प्रतीक योजना का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

10.3 प्रतीक की आवश्यकता

कवि कल्पना-प्रधान जीव होता है। वह सौंदर्य का उपासक होता है और उसको अपनी रचनाओं में अत्यंत सुंदर रूप में प्रस्तुत भी करना चाहता है। इसीलिए वह उन शब्दों का सहारा लेता है जिनसे वह अपने भावों को संक्षेप में व्यक्त भी कर दे और उनमें सुंदरता भी ला सके।

काव्य-रचना को सुंदर बनाने हेतु कवि शब्दों का प्रयोग उनके परंपरागत रूढ़ अर्थों में न करके उन्हें विशिष्ट अर्थ से युक्त करता है। वह प्रत्यक्ष को अप्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करके अपनी कविता को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करता है। आर.एल.ब्रेट के अनुसार 'कविता में सूक्ष्म सौंदर्य या उसकी अनुभूति को व्यक्त करने में प्रतीकों का अवतरण अनिवार्य होता है।' कभी-कभी किसी रहस्यानुभूति को मूर्त रूप देकर उसे बोधगम्य बनाने के लिए भी कवि को प्रतीक का सहारा लेना पड़ता है और कभी प्रणय जैसी संवेदनशील, नाजुक विषय-वस्तु को अभिव्यक्त करने के लिए भी कवि संकोचवश प्रतीक की शरण में जाता है। जयशंकर प्रसाद इस संदर्भ में कहते हैं - 'सौंदर्य-बोध की दृष्टि से ही प्रतीक महत्वपूर्ण नहीं हैं, अपितु उनका उपयोगितावादी पक्ष भी है।'

महादेवी के संदर्भ में जब हम प्रतीक के प्रयोजन, उसकी आवश्यकता पर विचार करते हैं तो हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होता है कि वह छायावादी युग की देन है। यह वास्तविकता है कि नई प्रतीकवादी कविता का श्रीगणेश छायावाद से हुआ। छायावाद की संवेदनीयता, रागात्मकता और रहस्यानुभूति तो प्रतीक के प्रयोग के लिए एक आदर्श भूमि प्रस्तुत करते हैं और महादेवी से अधिक ये विशेषताएँ और किसके काव्य में प्राप्त होती है? महादेवी का एक संवेदनशील व्यक्ति, विशेषकर स्त्री होना उनके लिए प्रतीक के प्रयोग को और भी आवश्यक बना देता है। अपने परम पुरुष के प्रति प्रेम निवेदन में उन्होंने प्रतीकों का ही सहारा लिया है। प्रकृति में हर कहीं उस विराट सत्ता के दर्शन करने वाली महादेवी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति से ही प्रतीक उठाने को बाध्य होती हैं। इनका काव्य रहस्यानुभूति से आप्लावित है। रहस्य का आवरण लेने वाले के लिए प्रतीक अनिवार्य हो जाते हैं। सौंदर्य की उद्भाविका महादेवी को जब सौंदर्य-चित्रण करना होता है तो प्रतीक उनके लिए एक आवश्यक उपकरण बन जाता है। डॉ0 मनोरमा शर्मा के अनुसार महादेवी के संदर्भ में प्रतीक कुंठाओं के उन्नयन और उदात्तीकरण में सहायक हुए हैं। यहां यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि संकोच की प्रवृत्ति के कारण भी महादेवी वर्मा को प्रतीकों का सहारा लेना पड़ा। सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में - 'नारी मन का सहज संकोच और तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि में नारी जीवन की सीमा ने ही महादेवी को मध्ययुगीन रहस्यवाद की ओर उन्मुख किया है।' इसीलिए, वे प्रेमपरक प्रतीकों का प्रयोग करने की ओर प्रवृत्त होती हैं। अज्ञेय ने 'पुष्करिणी' की भूमिका में लिखा है कि 'महादेवी जी में प्रसाद की भांति एक संकोच है .... संकोच ..... उन्हें भी प्रतीकों का आश्रय लेने को बाध्य करता है।'

10.4 महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतीक योजना

उपर्युक्त अंशों में हमने प्रतीक का अर्थ, उसकी परिभाषा और परंपरा को समझने का प्रयास किया। हमने यह भी समझा कि प्रतीक की आवश्यकता सामान्य स्तर पर और विशेषकर महादेवी के संदर्भ में क्यों प्रस्तुत होती है। महादेवी ने प्रतीकों का आश्रय क्यों लिया है? इस प्रश्न का उत्तर जानने की हमने कोशिश की। अब हम महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतीक-योजना का विवेचन करेंगे।

ऊपर हम पढ़ चुके हैं कि छायावाद का युग आधुनिक प्रतीकवादी कविता के आरंभ का युग था। इस काल के सभी प्रमुख कवियों ने प्रतीकों का अत्यंत सुंदर और सार्थक उपयोग किया। महादेवी वर्मा का इनमें विशिष्ट स्थान है। महादेवी ने प्रतीक को एक नया आयाम दिया। इस संदर्भ में डॉ0 चन्द्रकला का कथन उल्लेखनीय है - 'हिंदी साहित्य के शिल्पी, प्रतीकवाद के कवि प्रसाद, पंत, निराला अपनी कला से उसका शृंगार कर रहे थे, पूजा आरती का सामान लिए महादेवी दीप जलाने आ पहुँची।' (आधुनिक हिंदी काव्य में प्रतीकवाद) महादेवी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक होने के बावजूद उनके प्रतीक इस प्रकार चुने गए हैं कि उनसे अभिप्रेत व्यंजना में कोई बाधा नहीं होती।

डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त यह मानते हैं कि 'महादेवी की अनुभूति आध्यात्मिक है, पर अभिव्यक्ति लौकिक है अर्थात् लौकिक प्रतीकों के माध्यम से अलौकिक अनुभूति को व्यक्त किया गया है, अतः प्रतीकों की

योजना सहज स्वाभाविक रूप में हो गई है।' उदाहरण के लिए, ये पंक्तियाँ देखिए - 'क्षितिजकारा तोड़कर अब/ गा उठी उन्मत्त आँधी,/ अब घटाओं में न सकती/ लास-तन्मय तड़ित बांधी,/ धूलि की इस वीणा पर मैं तार हर तृण का मिला लूं।' दीपशिखा संकलन से ली गई इन पंक्तियों में महादेवी ने अपने परिवेश से प्रतीक उठाकर अपनी अलौकिक अनुभूति को सफल अभिव्यक्ति दी है। यहाँ 'धूल की इस वीणा' का अर्थ मनुष्य की यह माटीरूपी काया है।

महादेवी वर्मा प्रकृति प्रेमी होने के कारण अपने प्रतीक भी प्रकृति से ही उठाती हैं। उन्होंने प्रकृति के प्रत्येक उपकरण, प्रत्येक उपादान, प्रत्येक व्यापार में उस विराट सत्ता के दर्शन किए हैं। रहस्य तथा प्रणय के संकेतों से भरकर प्रकृति उनके समक्ष प्रस्तुत होती है और वह अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों को व्यंजित करने हेतु प्रकृति से लिए गए प्रतीकों का प्रयोग करती हैं। पिछली इकाई में हमने महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति तथा प्रणयानुभूति के विभिन्न चरणों के और सौंदर्य चित्रण के उदाहरण देखे। उन उदाहरणों को यदि आप प्रतीकात्मकता की दृष्टि से दोबारा पढ़ें तो आपको उनमें ऐसे प्रतीकों की भरमार मिलेगी जिन्हें प्रकृति से लिया गया है। एक स्थान पर वह कहती हैं - 'जिसको पथ शूलों का भय हो/ वह खोजे नित निर्जन गह्वर।' यहाँ 'शूलों' से उनका अभिप्राय मनुष्य के जीवन में आने वाली विभिन्न प्रकार की 'रूकावटें' अथवा 'बाधाओं से है। प्रणय की पुलक को व्यक्त करते हुए जब वे कहती हैं - 'अधरों से झरता स्मित पराग। प्राणों में गूंजा नेह-राग,/ सुख का बहता मलयज समीर!/ घुल-घुल जाता यह हिम-दुराव,/ गा-गा उठते चिर मूक भाव,/ अति सिहर-सिहर उठता शरीर!' तो उनके तन-मन का उल्लास प्रकृति के तमाम उपकरणों-व्यापारों में प्रतीकात्मक रूप में फूट पड़ता है। हँसी तो 'पराग' के रूप में झरने लगती है और सुख का प्रवाह मलयज समीर अर्थात् सुवासित वायु के झोंकों-सा बह निकलता है। अपने मनोदाह को वे व्यक्त करना चाहती हैं तो प्रकृति का उग्र रूप उनका भाव-वाहक बन जाता है - 'घोर तम छाया चारों ओर,/ घटाएँ घिर आईं घनघोर,/ वेग मारूत का है प्रतिकूल/ हिल जाते हैं पर्वत-मूल,/ गरजता सागर बारम्बार। 'अंधकार' उनकी निराशा का प्रतीक बन जाता है तो घटाएँ तमाम आशंकाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, मनुष्य रूपी नाविक के लिए (भव) सागर की गर्जना उसकी राह में तमाम बाधाओं, जीवन के अनेक कष्टों का प्रतीक बन जाती है।

पिछली इकाई में हमने सादृश्य अथवा साम्य को छायावादी प्रकृति चित्रण की एक उल्लेखनीय विशेषता के रूप में देखा। यहां यह उल्लेखनीय है कि छायावादी कवियों का सादृश्य अथवा साम्य के प्रति जो विशेष आग्रह रहा उसी ने तत्कालीन प्रतीक विधान को रूप दिया। क्योंकि छायावादी कवियों ने इस विशेषता को अत्यधिक महत्व दिया, इसलिए उनके प्रकृति चित्रण में प्रतीक का पक्ष प्रबल रहा। महादेवी की कविता इसके उपयुक्त, सटीक उदाहरण प्रस्तुत करती है। देखिए - 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से/ आ वसंत रजनी!/ मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,/ अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणी,/ भर पद-गति में अलस तरंगिणी,/ तरल रजत की धार बहा दे,/ मृदु स्मित से सजनी!/ विहंसती आ वसंत रजनी!'

प्रतीक केवल प्रकृति-चित्रण, रहस्य-व्यंजना और प्रणय निवेदन की उद्देश्य पूर्ति में साधक नहीं बने, अपितु न्होंने समकालीन मुक्ति चेतना को भी स्वर देने में महती भूमिका निभाई। महादेवी का यह आह्वान इस संदर्भ में द्रष्टव्य है - बाँध लेंगे क्या तुझे ये मोम के बंधन सजीले/पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले/ विश्व का क्रन्दन भुला देशी मधुप की मधुर गुन-गुन/ क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल के दल ओस गीले/ तू न अपनी छांह को अपने लिए कारा बनाना।'

महादेवी के काव्य में प्रतीक की आयोजना पर विचार करते समय हम इस तथ्य को भी रेखांकित कर सकते हैं कि उन्होंने अपनी शुरू की कविताओं में जिन शब्दों का प्रयोग उपमान के रूप में किया था, आगे चल कर वे शब्द उनकी रचनाओं में प्रतीक के रूप में उपस्थित हुए हैं। दूसरी बात, जैसा कि डॉ0 राधिका सिंह ने कहा है - प्रतीकों द्वारा वक्रतापूर्ण अभिव्यंजना महादेवी की विशेषता है। यहां हमें यह भी देखना होगा कि जहां तक सौंदर्यबोध का प्रश्न है, महादेवी वर्मा ने मोटे तौर पर दो प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है, जिनमें पहला है आत्मिक प्रतीक। इस प्रकार के प्रतीक उनके आध्यात्मिक सौंदर्य बोध को स्पष्ट करते हैं और इनसे महादेवी के दार्शनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति भी होती है। दूसरे हैं प्रेमपरक प्रतीक। ये वे प्रतीक हैं जो महादेवी के मानसिक सौंदर्य बोध को प्रकट करते हैं और इनके माध्यम से उनके मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व की झांकी मिलती है। इन सबके उदाहरण हमें आगे के अंशों में देखने को मिलेंगे। महादेवी की कविता में प्रतीक की योजना पर विचार करते समय एक और विशेषता की ओर ध्यान जाता है। वह विशेषता यह है कि उनकी कविताओं में हमें प्रतीकों की भरमार तो मिलती है, किंतु विविधता नहीं। यहाँ तक कि उनकी कृतियों के नाम भी प्रतीकात्मक हैं। उनकी जीवन-दृष्टि आध्यात्मिक होने पर भी उन्होंने इसकी अभिव्यक्ति के लिए लौकिक प्रतीकों का ही चयन

किया। प्रकृति प्रेमी होने के कारण उन्होंने अपने अधिकांश प्रतीक प्रकृति से ही उठाए, और इन्हीं के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रणयानुभूति, वेदनानुभूति और रहस्यानुभूति की व्यंजना की। प्रतीकों का ही सहारा लेकर महादेवी ने अपने युग की मुक्ति-आकांक्षा को भी विश्वसनीय स्वर दिया। उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग निश्चय ही बहुलता से किया किंतु उनमें विविधता का अभाव दिखायी देता है। अब आगे हम महादेवी वर्मा द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के विभिन्न वर्गों के विषय में चर्चा करेंगे।

10.5 महादेवी के प्रतीकों के विभिन्न प्रकार

उपर्युक्त अंश में हमने महादेवी वर्मा की कविताओं में प्रतीक की योजना के विषय में पढ़ा। इस संदर्भ में अन्य बातों के अतिरिक्त हमने यह भी जाना कि महादेवी ने मोटे तौर पर दो प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। एक, आत्मिक प्रतीक, जो उनके आध्यात्मिक सौंदर्य बोध को स्पष्ट करते हैं और इनसे महादेवी के दार्शनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है, और दो प्रेमपरक प्रतीक, जो कवयित्री के मानसिक सौंदर्य बोध को प्रकट करते हैं और इनके माध्यम से उनके मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व की झांकी मिलती है।

डॉ0 कुमार विमल ने 'छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन' में महादेवी वर्मा की कविताओं में इन चार प्रकार के प्रतीकों की पहचान की है - (1) वेद और उपनिषद के प्राचीन प्रतीक, (2) संत साहित्य के प्रतीक (3) छायावाद के अतिण्रिचित प्रतीक, और (4) अप्रस्तुतों के आवर्तक प्रयोग से बनाए गए (स्वनिर्मित) प्रतीक।

किंतु, डॉ0 मनोरमा शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महादेवी के काव्य में लालित्य विधान में महादेवी वर्मा की कविताओं में कम से कम बारह प्रकार के प्रतीकों की उपस्थिति बताई है। डॉ0 मनोरमा शर्मा ने महादेवी के काव्य में प्राप्त विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को अधिक विस्तार में देखा समझा है। यहां हम इसी को आधार बनाकर महादेवी वर्मा के काव्य में विभिन्न प्रकार के प्रतीक विषयक अपना विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

10.5.1 प्रकृति से उठाए गए प्रतीक

अन्य सभी छायावादी कवियों के समान, महादेवी वर्मा प्रकृति की अनन्य प्रेमी हैं। इस विषय पर हम पिछली इकाई में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के माध्यम से महादेवी ने अपने विविध मनोभावों, अपने राग-विराग को पूर्ण अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति में वह उस विराट सत्ता के दर्शन करती हैं और उसकी ही छवि चहुं ओर निहारती हैं। देखिए - 'चुभते ही तेरा अरूण बान.../ इन कनक रश्मियों में अथाह,/ लेता हिलोर तम-सिंधु जाग,/ बुदबुद-से वह चलते अपार,/ उसमें विहगों के मधुर राग,/ बनती प्रवाल का मृदुल कूल,/ जो क्षितिज रेख थी कुहर म्लान।' यहां 'अरूण बान' प्रियतम की मधुर चितवन का प्रतीक है। यह चितवन किस प्रकार प्रेयसि के मन में आनंद का संचार कर देती है, यह देखते ही बनता है। यहां 'कनक रश्मियों' में आशा का प्रतिनिधित्व होता है तो 'तम-सिंधु' घोर निराशा का द्योतक है, 'विहगों के मधुर राग' प्रेमिका के मन में उठने वाले मधुर भाव हैं। महादेवी की कविताओं में इनके उद्धरण अनायास मिल जाते हैं। हम विद्यार्थियों से आग्रह करेंगे कि वे महादेवी की काव्य रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़कर इस प्रकार के उदाहरण छांटे।

10.5.2 आध्यात्मिक प्रतीक

आपको अब तक यह स्पष्ट हो चुका होगा कि महादेवी वर्मा की जीवन-दृष्टि आध्यात्मिक है। यहां हम यह देखेंगे कि उन्होंने अपने काव्य को सौंदर्य-सज्जित करने के लिए प्रतीकों का चयन करते समय भी अध्यात्म का सहारा लिया है। कहना न होगा कि इनके आध्यात्मिक प्रतीकों में रहस्यात्मकता का पुट भी अनायास आ जाता है। यह उदाहरण देखिए - 'करूणामय को भाता है/ तम के परदों में आना,/ हे नभ की दीपावलियों!/ तुम पल भर को बुझ जाना!' यहां परम पुरुष के आगमन का सहारा लेकर कवयित्री ने आध्यात्मिक प्रतीक की रचना की। अज्ञेय प्रिय की रहस्यात्मकता के लिए 'तम' और 'दीपावलियों' जैसे प्रतीकों का प्रयोग सार्थक हुआ है। महादेवी जहां स्वयं को उस अज्ञेय, असीम प्रियतम की प्रेमिका मानती है, 'वहां वे रहस्यात्मक हो जाती हैं', और तब वे इसी प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग करती हैं।

10.5.3 साधनात्मक प्रतीक

महादेवी का संपूर्ण जीवन एक सतत साधना के रूप में उनके काव्य पटल पर चित्रित हुआ है। उन्होंने इस क्षेत्र से प्रतीक उठाकर अपनी विशिष्ट अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने ऐसे प्रतीकों का अत्यंत सुंदर प्रयोग किया है जिनसे साधना तथा श्रद्धा को अभिव्यक्ति मिली है। इस संदर्भ में अनेक उदाहरण उनके गीतों से दिए जा सकते हैं। देखिए - 'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो! रजत-शंख घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,/ गए आरती वेला को शत-शत लय से भर,/.... अब मंदिर में इष्ट अकेला,/ इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो!' इस उदाहरण में अनेक साधनात्मक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। यहां 'मंदिर' मानव शरीर का, 'दीप' उसकी आत्मा का, 'शंख', 'घड़ियाल' आदि मनुष्य की विभिन्न भावनाओं के और अजिर अंतर्मन का प्रतीक है। ज्ञातव्य है कि इस उद्धरण में प्रयुक्त 'दीपक' महादेवी का सबसे अधिक प्रिय प्रतीक है, जिसका पुनः-पुनः प्रयोग उनकी कविताओं में हुआ है।

10.5.4 परम्परागत प्रतीक

महादेवी वर्मा ने अपनी कविताओं में परंपरागत और सांस्कृतिक प्रतीकों का भी खूब प्रयोग किया है और उन्हें नया तेवर, नयी दिशा देने का प्रयत्न किया है। 'कमल' एक ऐसा ही प्रतीक है। यह उनका एक सर्वाधिक प्रिय प्रतीक है और इसके प्रयोग के भी उदाहरण उनकी कविताओं में मिलते हैं। उन्होंने अपनी एक कृति का नामकरण ही 'नीरजा' किया है। इस प्रकार के उद्धरणों में कवयित्री की लोक-कल्पना और व्यक्ति कल्पना दोनों का मणि-कांचन संयोग देखने को मिलता है। परंपरागत, सांस्कृतिक प्रतीक का यह उदाहरण देखिए - 'हुई उसमें इच्छा साकार/ उगल जिसने तिनरंगे तार/ बुन लिया अपना ही संसार।' यहां 'तिनरंगे तार' तीन गुणों (सत, रज और तम) का प्रतीक है।

10.5.5 सौंदर्यपरक प्रतीक

हम बार-बार पढ़ चुके हैं कि महादेवी वर्मा सौंदर्य की उद्भाविका हैं। अन्य छायावादी कवियों के समान महादेवी ने भी सौंदर्य को अपने काव्य में प्रधानता दी है। उन्होंने सर्वत्र उस चिर सौंदर्य के दर्शन किए हैं। प्रकृति के नारी रूप का भी अत्यधिक प्रयोग उनकी कविताओं में मिलता है। यह उदाहरण देखिए - 'रजनी के श्याम कपोलों / पर ढरकीले श्रम के कन।' यहां रात रूपी स्त्री के सांवले गालों (धुंधला आकाश) पर 'श्रम के कन' वस्तुतः तारों का प्रतीक है। एक और उदाहरण देखिए - 'मिल जाता काले अंजन में/ संध्या की आंखों का राग।' यहां 'अंजन' तो अंधेरे का प्रतीक है, जबकि 'संध्या की आंखों का राग' का प्रयोग कवयित्री ने सांझ की लालिमा के लिए किया है।

10.5.6 वेदना प्रधान प्रतीक

महादेवी वर्मा की कविता का मूल स्वर वेदना होने के कारण उसमें वेदना प्रधान प्रतीकों की कोई कमी नहीं है। अपनी वेदना को व्यक्त करने के लिए वह विभिन्न प्रतीकों को माध्यम बनाती हैं। कभी वह कहती हैं - 'विरह का जलजात जीवन' तो कभी वह स्वयं को 'नीर भरी दुःख की बदली' बताती हैं। उनकी वेदना जब व्यष्टि की परिधि से निकल कर समष्टि को छूती है तो वह कहती हैं - 'मेरे गीले पलक छुओ मत/ मुरझाई कलियाँ देखो।' यहां 'मुरझाई कलियां' उन शिशुओं का प्रतीक हैं जो पर्याप्त पोषण के अभाव में म्लान हो जाते हैं।

10.5.7 भावनात्मक प्रतीक

महादेवी की कविताओं में विभिन्न भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण अत्यंत सुंदर ढंग से हुआ है। भावनात्मक सौंदर्य के लिए कवियत्री भावनात्मक प्रतीकों का प्रयोग करती हैं। गीत की विशेषता यही होती है कि उसमें किसी एक अनुभूति को लेकर ही चला जाता है। यही गीत के सौंदर्य और उसकी सफलता का रहस्य होता है और, यह खुला रहस्य है कि महादेवी एक सफलतम गीति-लेखिका हैं। भावनात्मक प्रतीक के उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियां देखिए - 'सब बुझे दीपक जला लूं! घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूं।' यहां कवयित्री ने 'दीपक' को आत्मा, प्राण का प्रतीक बनाकर उसे जगाना चाहा है, अर्थात् वह प्रिय मिलन के लिए प्राणों की जड़ता को तोड़कर 'तम' अर्थात अज्ञानता के अंधकार से बाहर आना चाहती हैं, जिससे कि प्रिय मिलन का मार्ग प्रशस्त हो सके।

10.5.8 आत्मचेतना संबंधी प्रतीक

छायावादी कवियों की एक सामान्य विशेषता यह रही कि उन्होंने प्रकृति के अंदर एक चेतन सत्ता की उपस्थिति का अभिज्ञान किया। महादेवी तो इस क्षेत्र में अधिक मुखर हैं। जैसे प्रतीकों में शलभ, वीणा,

तार, सरिता आदि प्रमुख हैं। एक उदाहरण देखिए - 'सिंधु को क्या परिचय दें देव! .../ क्षुद्र हैं मेरे बुद्-बुद् प्राण/ तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।' यहां 'सिंधु' प्रतीक है उस असीम सत्ता का। एक उदाहरण और देखिए : 'झटक जाता था पागल वात/ धूलि में तुहिन कणों के हार।' यहां 'वात' और 'तुहिन कणों' का अभिनव प्रयोग द्रष्टव्य है, जिनका अभिप्राय क्रमशः युवक और आंसुओं से है। देखने योग्य है कि किस प्रकार प्रेम में उन्मत्त युवक आंसू बहाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि महादेवी के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत कुशलता से हुआ है। उन्होंने अपनी मूलभूत अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए तदनुकूल प्रतीकों का प्रयोग किया है। भाव के स्तर पर सुंदर उनकी कविताओं को प्रतीकों के सम्यक प्रयोग ने शिल्प के स्तर पर भी सुंदरता प्रदान की है। वैसे महादेवी के प्रतीकों के प्रयोग को देखकर यह लगता रहा है कि उनमें दोष है, वे दुरूह हैं, और कहीं-कहीं उनमें अनिश्चितता भी झलकती है। किंतु हम नामवर सिंह के इस कथन को निर्णायक मानेंगे कि महादेवी वर्मा के 'प्रतीक रहस्यात्मक हैं, भाषा अस्पष्ट है - फिर भी उनसे जो कुछ व्यंजित होता है वह वास्तविक है।'

10.6 महादेवी द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के चार वर्ग

उपर्युक्त अंश में आपने महादेवी वर्मा के काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों के विभिन्न प्रकारों के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब हम महादेवी में प्रतीक के चार वर्गों के बारे में पढ़ेंगे। ये हैं : (1) मूर्त के लिए मूर्त प्रतीक, (2) अमूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक, (3) मूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक, और (4) अमूर्त के लिए मूर्त प्रतीक।

10.6.1 मूर्त के लिए मूर्त प्रतीक

इस वर्ग में मूर्त प्रस्तुत विषय के लिए प्रयुक्त मूर्त प्रतीक आते हैं। जैसे, दीपक का प्रतीक रूप में प्रयोग सामान्यतया साधनाशील मन के लिए हुआ है, किंतु इन पंक्तियों में इस मूर्त प्रतीक का प्रयोग मानव शिशु के लिए किया गया है, जो स्वयं मूर्त प्रस्तुत विषय है - 'तेरे असीम आंगन की/ देखूँ जगमग दीवाली,/ या इस निर्धन कोने में/ बुझते दीपक को देखूं।/' एक और उदाहरण देखिए - 'समीरण के पंखों में गूंथ/ लुटा डाला सौरभ का भार,/ दिया दुलका मानस-मकरंद/ मधुर अपनी स्मृति का उपहार।' यहां मकरंद मूर्त प्रतीक है, जिसका प्रयोग आँसू (मूर्त) के लिए किया गया है। इसी प्रकार - 'छू अरूण का किरण-चामर/ बुझ गए नभ-दीप निर्भर/ में मूर्त प्रतीक 'नभ दीप' का प्रयोग मूर्त तारों के लिए किया गया है। इसी प्रकार 'कनक-रजत के मधु प्याले' का प्रयोग सूर्य-चन्द्रमा के लिए, 'नभ के नयन' का प्रयोग तारों के लिए किया गया है। इसी प्रकार - 'स्मित ले प्रभात आता नित/ दीपक दे संध्या जाती,/ दिन ढलता सोना बरसा/ निशि मोती दे मुस्काती' को लीजिए। इन पंक्तियों में मूर्त 'स्मित', 'दीपक', 'सोना', और 'मोती' का प्रयोग क्रमशः किरण, चंद्रमा, सुनहरा आकाश और ओस की बूंदों के लिए हुआ है। इसी प्रकार, शलभ को प्रतीक बनाकर भी महादेवी ने मूर्त प्रस्तुतों की व्यंजना की है। उनकी कविताओं में इस वर्ग के प्रतीकों के अन्य उदाहरण आप खोज सकते हैं।

10.6.2 अमूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक

मूर्त विषय के लिए मूर्त प्रतीक की योजना इतनी दुष्कर नहीं होती, जितनी कि अमूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक की होती है। इस प्रकार का प्रतीक विधान कम ही देखने में आता है। महादेवी ने भी अमूर्त प्रतीकों का जो प्रयोग किया है उनमें पुनरावृत्ति अधिक हुई है। ये दो उदाहरण देखिए, जिनमें 'स्वप्न' का प्रयोग प्रतीक के रूप में किया गया है - (क) अपने जर्जर अंचल में/ भर कर सपनों की माया, और (ख) 'उड़ा तू छंद बरसाता,/ चला मन स्वप्न बिखराता।' यहां (क) में 'स्वप्नों' का प्रयोग विगत की अनुभूतियों के लिए किया गया है। जबकि (ख) में 'स्वप्न' से अभिप्राय प्रियतम की छवि से उद्भूत मधुर भाव से है। इसी प्रकार अमूर्त 'सौरभ' का प्रयोग महादेवी ने अमूर्त भावों के लिए किया है, इस प्रतीक की भी उनकी कविताओं में पुनरावृत्ति हुई है। दो उदाहरण देखिए द्व (क) 'यह सांसें गिनत-गिनते/ नभ की पलकें झप जातीं,/ मेरे विरक्त अंचल में/ सौरभ समीर भर जाती', और (ख) 'मैं पलकों में पाल रही हूँ/ यह सपना सुकुमार किसी का!/ लाया झंझा-दूत सुरभिमय/ सांसों का उपहार किसी का।' यहां (क) में सौरभ का प्रयोग प्रियतम से मिलन की स्मृतियों के लिए किया गया है, जबकि (ख) में 'सुरभिमय' सांस प्रियतम के अनुकूल भावों का बोध कराती है।

10.6.3 मूर्त के लिए अमूर्त प्रतीक

मूर्त अथवा स्थूल प्रतीकों का सहारा लेकर अमूर्त अथवा सूक्ष्म को स्पष्ट करना सामान्य रूढ़ि है। किंतु अमूर्त अथवा सूक्ष्म प्रतीक का प्रयोग करके उसके किसी मूर्त अथवा स्थूल को स्पष्ट करने का प्रयास करना धारा के विपरीत बहने का प्रयत्न करने के समान है। यह अपने आप में न केवल असामान्य है, अपितु दुष्कर भी है। फिर भी, महादेवी ने इस प्रकार का प्रतीक-विधान अपनी कविताओं में दक्षता से किया है। यह उदाहरण देखिए - 'किस मलय सुरभित अंक रहा/ आया विदेशी गंधवह?' यहां 'गंधवह' (वायु) का प्रयोग महादेवी ने हरजाई प्रियतम के लिए किया है, जो किसी पराई स्त्री के साथ विहार करने के बाद मासूम प्रेयसी को बहकाने आया है। एक और उदाहरण देखिए - 'कलियों की घन जाली में/ छिपती देखूं लतिकाएं,/ या दुर्दिन के हाथों में/ लज्जा की करूणा देखूं।' यहां अमूर्त 'लज्जा' का प्रतीकात्मक प्रयोग अबला स्त्री के लिए किया गया है, जिसके प्रति कवयित्री अपनी सहानुभूति प्रकट करती है। विद्यार्थियों से आग्रह है कि वे ऐसे ही अन्य उदाहरण महादेवी की कविताओं में ढूंढे और उनका आनंद लें।

10.6.4 अमूर्त के लिए मूर्त प्रतीक

अमूर्त अथवा सूक्ष्म के लिए मूर्त अथवा स्थूल प्रतीकों का प्रयोग सामान्य बात है। अनेकानेक कवियों ने अनेकानेक बार इनका प्रयोग किया है। महादेवी वर्मा की कविताओं में भी ऐसे प्रयोगों की भरमार है। उन्होंने तो एक ही मूर्त प्रतीक का प्रयोग अलग-अलग संदर्भ में अलग-अलग अमूर्त विषयों अथवा भावों के लिए किया है। कुछ उदाहरण देखिए - (क) 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल!' यहाँ 'दीपक' का प्रयोग प्रतीक रूप में जीवन के लिए किया गया है, (ख) 'शलभ मैं शापमय वर हूँ।/ किसी का दीपक निष्ठुर हूँ।' यहाँ 'दीप' का प्रयोग वेदना के लिए किया गया है। (ग) 'टूट गया वह दर्पण निमर्म!/ उसमें हंस दी मेरी छाया।' यहां मूर्त 'दर्पण' का प्रयोग माया के लिए किया गया है। जब तक माया का आवरण रहता है, आत्मा-परमात्मा का मिलन संभव नहीं होता, किंतु माया का दर्पण टूटते ही तादात्म्य की स्थिति बन जाती है।

इसी प्रकार (घ) 'कण-कण में रच अभिनव बंधन/ क्षण-क्षण को कर भ्रममय उलझन,/ पथ में बिखरा शूल/ बुला जाते हो दूर अकेले।' यहाँ 'शूल' प्रतीक है कष्टों, बाधाओं का। (च) 'इसमें उपजा यह नीरज सित,/ कोमल-कोमल लज्जित मीलित,/ सौरभ सी लेकर मधुर पीर!/ इसमें न पंक का चिह्न शेष,/ इसमें न ठहरता सलिल लेश,/ इसको न जगाती मधुपा भोर!' इस उद्धरण में 'पंक' (कीचड़) कलुषता का, सलिल (जल) सांसारिक मोह का, और मधुप (भौंरा) लौकिक आकर्षण का प्रतीक है।

10.7 महादेवी के प्रतिनिधि और प्रिय प्रतीक

उपर्युक्त अंश में हमने महादेवी की कविता में प्रयुक्त प्रतीकों के चार वर्गों का अवलोकन किया। हमने देखा कि महादेवी वर्मा ने किस प्रकार अपने काव्य में मूर्त प्रस्तुत विषय के लिए मूर्त प्रतीक, अमूर्त प्रस्तुत विषय के लिए अमूर्त प्रतीक, मूर्त प्रस्तुत विषय के लिए अमूर्त प्रतीक, अमूर्त प्रस्तुत विषय के लिए मूर्त प्रतीक का प्रयोग अत्यंत सुंदर ढंग से किया है। महादेवी ने अपनी कविताओं में विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का सफल प्रयोग किया है, जिनकी बानगी हम उपर्युक्त अंशों में देख चुके हैं। कुछ प्रतीक ऐसे हैं जिनका प्रयोग महादेवी ने बार-बार किया है और अनेक बार तो उनका प्रयोग अलग-अलग अर्थों में हुआ है। महादेवी के ऐसे कुछ प्रिय अथवा प्रतिनिधि प्रतीकों की चर्चा यहां प्रासंगिक होगी।

1. **दीपक** : महादेवी का सर्वाधिक प्रिय प्रतीक दीपक है। उनकी कविताओं में यह प्रतीक के रूप में बहुलता से प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः कवयित्री के प्रतिनिधि प्रतीकों का विश्लेषण करके हम उनके मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व का अभिज्ञान कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, जब वह 'दीपक' का प्रतीक के रूप में प्रयोग करती हैं, तो उनकी एकांत साधिका की छवि मुखरित होती है। उनका दार्शनिक चिंतन उससे स्पष्ट होता है और यह भी परिलक्षित होता है कि वह प्रणय के क्षेत्र में आत्मोत्सर्ग को वरीयता देती हैं। हम उपर्युक्त अंशों में दीपक का प्रयोग देख चुके हैं। यहां कुछेक उदाहरण पर्याप्त होंगे (क) 'दीप मेरे जल अकम्पित/ घुल अचंचल'। कवयित्री अपने परम पुरुष के प्रणय में दीपक के समान अविकल, अविराम जली है, उन्होंने अपने प्रेम को डगमगाने नहीं दिया, विचलित नहीं होने दिया, वह 'अकम्पित' रही है प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति में। (ख) स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता/ जब अपने जीवन की हार / गोधूली नभ के आंगन में / देती अगणित वार' यहां दीपक प्रतीक है तारों का / इसी प्रकार, (ग) 'प्राण में जो जल उठा और है दीपक चिरन्तन' में

दीपक का प्रयोग अज्ञात प्रियतम के लिए हुआ है। महादेवी ने अपने जीवन को दीपक के समान एकनिष्ठ साधना में प्रज्वलित रहकर व्यतीत किया है। स्वयं जल कर भी वह परिवेश को आलोकित कर देती हैं।

2. **कमल** : महादेवी का पूरा जीवन ही 'विरह का जलजात' है। वह कमल के समान इस मायावी संसार के मायामोह, लौकिक आसक्ति के कीचड़ में रहकर भी कमल-सी निर्लिप्त रहती है। यहां भी उनके साधक व्यक्तित्व की ही अभिव्यंजना होती है। इस प्रतीक से उनका इतना लगाव रहा कि उन्होंने अपनी एक कृति का नामकरण 'नीरजा' कर दिया। कमल (पंकज) को प्रतीक रूप में प्रयुक्त करने का एक उदाहरण देखिए - 'नव इंद्र धनुष सा चीर/ महावर अंजन ले,/ अलि-गुंजित मीलित पंकज नभ से रून-झुन ले,/फिर आई मनाने सांझ/ मैं बेसुध मानी नहीं।' कवयित्री स्वयं को लज्जालु भारतीय नारी के रूप में और इस लज्जाशील सौंदर्य की व्यंजना के लिए वह कमल (नीरज) को ही प्रतीक बनाती है - 'इसमें उपजा यह नीरज स्मित,/ कोमल-कोमल लज्जित मीलित,/ सौरभ सी लेकर मधुर पीर!'

3. **यात्री** : यात्री का प्रयोग भी महादेवी की कविता में प्रतीक रूप में बहुलता से हुआ है। यह जीवन एक यात्रा ही है और हममें से प्रत्येक व्यक्ति एक यात्री। इस जीवन-यात्रा के दौरान प्रत्येक यात्री के अपने अलग-अलग अनुभव होते हैं। महादेवी ने यात्री को कहीं पथिक के रूप में प्रस्तुत किया है तो कहीं नाविक के रूप में। कुछ उदाहरण देखिए (क) 'पंथ होने दो अपरिचित,/ प्राण रहने दो अकेला', (ख) 'अग्नि पंथी मैं तुझे दूं/ कौन-सा प्रतिदान?' (ग) 'तरी को ले जाओ मंझधार/ डूबकर हो जाओगे पार'। इस प्रकार, महादेवी अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को 'पथिक' और 'नाविक' जैसे प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति देती हैं।

4. **शूल और झंझा** : जीवन-यात्रा पर निकले यात्री की राह हमेशा ही आसान हो, ऐसा संभव नहीं है। उसके मार्ग में अनेक बाधाएं भी आ सकती हैं, आती हैं। इन बाधाओं की परवाह न करते हुए अपने गंतव्य की ओर बढ़ते जाना, उस परम सत्ता से मिलन के लिए निरंतर चलते जाना ही यात्री का धर्म होता है। महादेवी ने बाधाओं के लिए 'शूल' और 'झंझा' जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये उनके प्रिय प्राकृतिक प्रतीक हैं। पथिक की राह में बाधाएं 'शूल' बन कर आती हैं तो नाविक की राह में 'झंझा' (आंधी) बनकर - (क) 'अन्य होंगे चरण हारे,/ और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे', (ख) 'पथ में बिखरा शूल/ बुला जाते हो दूर अकेले।' (ग) 'ढूंढती झंझा मुझसे लें,/ मृत्यु का वरदान!/शेष यात्रा यामिनी मेरा निकट निर्वाण,' और (घ) 'आलोक तिमिर सित आसित चीर,/ सागर-गर्जन रूनझुन मंजीर,/ उड़ता झंझा में अलक जाल।' यहां प्रथम दो उद्धरणों में बाधाओं के लिए 'शूल' का और अंतिम दो उद्धरणों में बाधाओं के लिए 'झंझा' का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

5. **दर्पण** : इस जगत में जीव क्यों परमात्मा से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता, इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि वह माया के बंधन में बंधा रहता है। माया उसे परम पुरुष में लीन नहीं होने देती। आध्यात्मिक जीवन दृष्टि की कवयित्री होने के नाते महादेवी अपनी कविताओं में माया के तत्व पर गंभीरता से विचार करती हैं और माया के लिए उन्होंने 'दर्पण' का प्रयोग प्रतीक-रूप में किया है - 'टूट गया वह दर्पण निर्मम!/ उसमें हंस दी मेरी छाया', 'तोड़कर वह मुकुट जिसमें रूप करता हास/ पूछता आधार क्या प्रतिबिंब का आवास?' और 'तोड़ देता खीजकर जब तक न प्रिय यह मृदुल दर्पण।' आत्मा-परमात्मा, प्रेयसी-प्रियतम का मिलन तभी संभव है जब यह 'दर्पण' टूट जाएगा। तादात्म्य के लिए यह अनिवार्य है।

6. **शलभ** : दीपक महादेवी का केंद्रीय प्रतीक है। जहां दीपक होगा, वहां शलभ की उपस्थिति निश्चित-सी हो जाती है। अपने इस प्रिय प्रतीक का प्रयोग महादेवी ने संदर्भानुसार भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। देखिए - (क) 'विश्व-शलभ सिर धुन कहता 'मैं/ हाय न जल पाया तुझ में मिल', (ख) 'शलभ अन्य की ज्वाला से मिल,/ झुलस कहां हो पाया उज्ज्वल!' (ग) 'दीपकमय कर डाला जब/ जलकर पतंग ने जीवन', और (घ) 'क्यों जग कहता मतवाली?/ क्यों न शलभ लुट-लुट जाऊँ/ झुलसे पंखों को चुन लाऊं।' यहां (क) और (ख) में शलभ को मूढ़ जीव के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और (ग) (पतंग) तथा (घ) में वह आदर्श प्रेमी का प्रतीक है।

इस प्रकार हमने देखा कि महादेवी के कुछ प्रिय प्रतीक उनके आध्यात्मिक, आत्म बलिदानी, अटल, निर्लिप्त व्यक्तित्व को ही प्रतिबिंबित करते हैं। उनकी कविताओं में बारंबार आकर ये प्रतीक उनके काव्य सौंदर्य की अनूठी पहचान बन गए हैं। इन प्रतीकों ने उनकी विविधता को प्रभावित तो किया है, किंतु इससे उनकी काव्यगत सुंदरता पर कोई आँच नहीं आती। प्रातेमा कृष्ण बल का कथन है -

'प्रसाद, निराला, पंत की तुलना में महादेवी के काव्य का प्रतीक वैविध्य अत्यंत सीमित है, किंतु उन सीमित प्रतीकों के ही संयोजन में वैविध्य उत्पन्न कर उन्होंने इसकी क्षतिपूर्ति कर ली है।' (छायावाद का काव्य-शिल्प)

10.8 सारांश

इस इकाई में हमने महादेवी वर्मा की कविताओं में प्रतीकों के प्रयोग के विषय में जानकारी प्राप्त की। इकाई के प्रारंभ में हमने प्रतीक के अर्थ, उसकी परिभाषा, और परंपरा को समझा। हमने इस बिंदु पर भी विचार किया कि प्रतीक का प्रयोजन, उसकी आवश्यकता, उसका महत्व क्यों होता है, और महादेवी को प्रतीकों का सहारा क्यों लेना पड़ा। हमने विभिन्न क्षेत्रों से लिए गए महादेवी के प्रतीकों की भी बानगी ली। हमने महादेवी की कविताओं में प्रतीक- विधान के विभिन्न पक्षों पर गौर किया। हमने उनके प्रतीकों के विभिन्न प्रकारों के बारे में जाना और उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के चार वर्गों पर भी दृष्टिपात किया। अंत में हमने महादेवी की कविताओं में बारंबार प्रकट होने वाले, अर्थात उनके प्रतिनिधि अथवा प्रिय प्रतीकों के उदाहरण भी देखे। हमें विश्वास है कि अब आपके समक्ष महादेवी की प्रतीक योजना की अवधारणा स्पष्ट हो गई होगी।

10.9 प्रश्न

1. महादेवी की प्रतीक-योजना संबंधी मूलभूत विशेषताओं को स्पष्ट करें।
2. 'महादेवी ने अपनी रहस्यभावना की अभिव्यक्ति के लिए प्रायः प्रतीकों का ही सहारा लिया है।' इस कथन की सोदाहरण व्याख्या करें।
3. 'प्रकृति के क्षेत्र से लिए गए महादेवी के प्रतीकों के महत्व पर प्रकाश डालें।
4. 'महादेवी ने लौकिक प्रतीकों द्वारा अपने अलौकिक प्रेम को कुशलतापूर्वक व्यक्त किया है।' इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालें।

इकाई 11 सुमित्रानंदन पंत की काव्य-यात्रा के विविध चरण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 पंत की काव्य-यात्रा के विविध चरण
  11.2.1 प्रथम चरण : छायावाद-स्वच्छंदतावाद
    11.2.1.1 पंत का प्रकृति चित्रण
    11.2.1.2 नारी सौंदर्य और प्रणय भाव
    11.2.1.3 कल्पना की ऊँची उड़ान
  11.2.2 द्वितीय चरण : प्रगतिवादी जीवन बोध
  11.2.3 तृतीय चरण : अरविन्द दर्शन पर आधारित आध्यात्मिक नव-मानवतावाद
11.3 सारांश
11.4 प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाइयों में आपने छायावाद के प्रमुख तीन स्तम्भों - प्रसाद, निराला एवं महादेवी वर्मा के काव्य-जगत का विस्तृत अध्ययन कर लिया है। प्रस्तुत इकाई में आप छायावाद के चौथे स्तम्भ - सुमित्रानंदन पंत के काव्य का अध्ययन करने जा रहे हैं । इसे पढ़ने के बाद आप :

- पंत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे,
- पंत की काव्य-यात्रा में आए मोड़ों के कार्य-कारण संबंध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- छायावादी काव्य-संवेदना की प्रकृति को समझ सकेंगे,
- पंत के छायावादी-स्वच्छंदतावादी चरण के काव्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे,
- पंत के प्रगतिशील भाव-बोध से परिचित होकर उसकी समुचित जाँच-परख कर सकेंगे,
- अरविन्द दर्शन के प्रभाव में अंतश्चेतना पर आधारित पंत के नव मानवतावाद की मूलभूत विशेषताओं की आलोचनात्मक छानबीन कर सकेंगे, और
- पंत की काव्य-यात्रा के विभिन्न सोपानों की पारस्परिक संगति-असंगति का समुचित निरीक्षण-परीक्षण कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

छायावादी काव्यधारा को एक नयी गति देने में सुमित्रानंदन पंत की भूमिका उल्लेखनीय रही है। भाव, भाषा एवं शिल्प - सभी दृष्टियों से पंत ने छायावाद को सम्पन्न बनाया है। अपने लम्बे जीवन काल (1900 से 1977 तक) के लगभग साठ वर्षों में वे निरंतर रचनाशील रहे हैं। इनकी इस समूची काव्य-यात्रा को एक सीधी-सपाट रेखा द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अपनी इस लम्बी रचना-यात्रा में कई मंजिलों से गुज़रते हुए इन्होंने विभिन्न विचारधाराओं और भावधाराओं का अनुगमन किया है। अपने कृतित्व के लिए पंत जी को यथोचित सम्मान भी मिला है। सन् 1961 में भारत सरकार द्वारा इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया। उसी वर्ष इनकी काव्य कृति 'कला और बूढा चांद' को साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। 1964 ई0 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दस हज़ार रूपए के विशेष पुरस्कार से अंलकृत किया गया। अपने 'चिदम्बरा' काव्य संग्रह पर इन्हें 1969 में भारतीय ज्ञानपीठ का सर्वोच्च पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

छायावादी कवियों में सर्वाधिक काव्य-रचना पंत ने ही की है। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं, उच्छ्वास, वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, ज्योत्सना, उत्तरा, रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा, वाणी, पल्लविनी, आधुनिक कवि, कला और बूढ़ा चांद, रश्मिबंध, चिदम्बरा, समाधिता, लोकायतन, किरण वीणा, गीत हंस, पतझर : एक भाव क्रांति, गंधवीथि, सत्यकाम आदि।

विषयवस्तु की भिन्नता के बावजूद पंत के समूचे काव्य में कल्पना की स्वच्छंद उड़ान, प्रकृति के प्रति लगाव और प्रकृति तथा मानव-जीवन के कोमल और सरस पक्ष के प्रति आग्रह समान रूप से मिलेगा। अपने काव्य में कल्पना के महत्व को रेखांकित करते हुए पंत ने लिखा है, 'मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ। .... मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। मेरा विचार है कि वीणा से लेकर ग्राम्या तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है, और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा है। शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे हैं। (आधुनिक कवि, पृष्ठ 39) पंत की यह मान्यता विचारणीय है। उच्छवास, ग्रंथि, गुंजन के साथ ही लोकायतन तक की बहुत सी रचनाओं के संदर्भ में पंत का उक्त कथन सही प्रतीत होता है, लेकिन यह बात युगवाणी, ग्राम्या आदि जैसी वैचारिक रचनाओं के संदर्भ में सही प्रतीत नहीं होती। इस पर हम आगे यथा-स्थान इसी इकाई में विचार करेंगे।

पंत के काव्य का समुचित विवेचन-विश्लेषण करने के लिए एक दूसरा महत्वपूर्ण विचारणीय तथ्य यह है कि इन्होंने अपने कई काव्य-संग्रहों में अपने काव्य का औचित्य सिद्ध करने के लिए लम्बी भूमिकाएँ लिखी हैं। इसकी आवश्यकता उन्हें क्यों महसूस हुई? पंत जी पर कई समीक्षकों का आरोप है कि वे 'पेंदी के लोटा या थाली के बैंगन' की तरह हैं, जिन्हें समय का हर झटका अपनी दिशा में लुढ़का देता है। इस आरोप की चुनौती को स्वीकार करते हुए इन्होंने 'उत्तरा' संग्रह की प्रस्तावना में लिखा है, 'लेखक की कृतियों में विचार-साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को अधिक महत्व देना चाहिए, क्योंकि लेखक एक सजीव अस्तित्व या चेतना है और वह भिन्न-भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शों तथा संवेदनाओं से आंदोलित होता रहता है।' (पृष्ठ 2) पंत की परिवर्तनशीलता तथा उक्त मान्यता की सार्थकता पर आगे इसी इकाई में यथोचित स्थान पर विचार किया जाएगा।

पंत जी के समग्र कृतित्व को ध्यान में रखकर इनकी काव्य-यात्रा को विभिन्न मोड़ों या चरणों में विभाजित किया जा सकता है :

1. छायावादी या स्वच्छंदतावादी चरण
2. समाजनिष्ठ प्रगतिशील-मार्क्सवादी चरण
3. अरविंद दर्शन पर आधारित समन्वयवादी चरण

इन पर अलग-अलग विचार कर पंत जी की काव्य-यात्रा के विभिन्न सोपानों की विशेषताओं को आप आसानी से समझ सकते हैं।

11.2 पंत की काव्य यात्रा के विविध चरण

11.2.1 प्रथम चरण : छायावाद-स्वच्छंदतावाद

जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा से सम्बद्ध इकाइयों में आप छायावाद की मूलभूत विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। छायावाद का प्रमुख गुण व्यक्तिवाद पर टिकी आत्मानुभूति या आत्माभिव्यक्ति है। अपनी आशा-निराशा, प्रेम, विरह, व्यथा, सौंदर्यानुभूति के अनेकशः मनोरम चित्र इस युग के कवियों में मिलते हैं। वैयक्तिक स्वतंत्रता की भावना और भारतीय मुक्ति आंदोलन से छायावादी कवियों ने जो सबसे महत्वपूर्ण चीज़ प्राप्त की वह है, मानसिक स्वाधीनता। विध्वंस प्रस्त समाज के विभिन्न क्षेत्रों में इस स्वाधीनता की अभिव्यक्ति संभव नहीं थी, अतः इस युग के कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वच्छंद कल्पना और प्रकृति का सहारा लिया। इनके माध्यम से अनेक रूढ़ियों, विधि-निषेधों तथा जर्जर परंपराओं से मुक्ति का इन्हें अत्यंत सुगम मार्ग मिला। इस तथ्य को पंत के छायावादी काव्य में भी आप आसानी से देख सकेंगे।

11.2.1.1 पंत का प्रकृति चित्रण

प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम और कल्पना की ऊँची उड़ान पंत के काव्य की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। छायावाद के अन्य कवियों- प्रसाद, निराला और महादेवी से भिन्न पंत का प्रकृति प्रेम एक ठोस वस्तुगत सच्चाई पर आधारित है। यह सच्चाई है इनका निजी प्राकृतिक परिवेश। कूर्मांचल प्रदेश, विशेष रूप से कौसानी गाँव का सुरम्य प्राकृतिक वातावरण, जहाँ पंत पैदा हुए, इनकी काव्य प्रेरणा का प्रमुख स्रोत रहा है। यह प्राकृतिक परिवेश किसी अन्य छायावादी कवि को नहीं मिला था। इसका

उल्लेख करते हुए पंत ने लिखा हैं, 'कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था। .... प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौंदर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जनभीरू भी बना दिया।' (आधुनिक कवि, पृष्ठ 2)

पंत का यह साहचर्यजन्य प्रकृति-प्रेम उनकी प्रथम रचना 'वीणा' से लेकर 'लोकायतन' नामक महाकाव्य तक में समान रूप से देखा जा सकता है। अपने कवि जीवन के आरंभिक दौर में पंत प्राकृतिक सौंदर्य से इतने अभिभूत थे कि नारी सौंदर्य के आकर्षण को भी उसके सम्मुख न्यून मान लिया था :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

पंत के यहाँ प्रकृति निर्जीव जड़वस्तु होकर एक साकार और सजीव सत्ता के रूप में उपस्थित हुई है। उसका एक-एक अणु, प्रत्येक उपकरण कवि-मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है। संध्या, प्रातः, बादल, वर्षा, वसंत, नदी, निर्झर, भ्रमर, फूल, तितली, पक्षी आदि सभी उसके मन को आंदोलित करते हैं। यहाँ संध्या का एक जिज्ञासापूर्ण चित्र दर्शनीय है :

कौन, तुम रूपसि कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया में छवि आप,
सुनहला फैला केश कलाप-
मधुर, मंथर, मृदु, मौन!

इस पूरी कविता में संध्या को एक आकर्षक युवती के रूप में मौन, मंथर गति से पृथ्वी पर पदार्पण करते हुए दिखा कर कवि ने संध्या का मानवीकरण किया है। प्रकृति का यह मानवीकरण छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। चाँदनी, बादल, छाया, ज्योत्सना, किरण आदि प्रकृति से संबंधित अनेक विषयों पर पंत ने स्वतंत्र रूप से कविताएँ लिखी हैं। इनमें प्रकृति के दुर्लभ मनोरम चित्र प्रस्तुत हुए हैं। पंत की बहुत सी प्रकृति संबंधी कविताओं में उनकी जिज्ञासा-भावना के साथ ही रहस्य भावना भी व्यक्त हुई है। 'प्रथम रश्मि', 'मौन निमंत्रण' आदि जैसी बहुत सी कविताएँ तो मात्र जिज्ञासा भाव को ही व्यक्त करती हैं। इसके लिए प्रथम रश्मि का एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

प्रथम रश्मि का आना रंगिणी!
तूने कैसे पहिचाना?
कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनि!
पाया तूने यह गाना।

इसी तरह मौन निमंत्रण में भी कवि की किशोरावस्था की जिज्ञासा ही प्रमुख है। लेकिन पंत की प्रकृति से सम्बद्ध ऐसी बहुत सी कविताएँ भी हैं, जिनमें इनके गहन एवं सूक्ष्म निरीक्षण के साथ ही इनकी आध्यात्मिक मान्यताएँ भी व्यक्त हुई हैं। इस दृष्टि से 'नौका विहार', 'एक तारा' आदि कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ उदाहरण के लिए संध्या का एक चित्र है :

गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल,
है मूँद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्ण रेख सुंदर पड़ गयी नील, ज्यों अधरों पर,
अरूणाई प्रखर शिशिर से डर।

यहाँ गंगा के चंचल जल में रक्तोत्पल (लाल कमल) के समान सूर्य के बिम्ब का डूबना और गंगा की लहरों पर संध्या की सुनहली आभा का धीरे-धीरे नीलिमा में परिवर्तित होना आदि कवि के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण और उसकी गहन रंग-चेतना का परिचायक है। लेकिन कविता के अंत में कवि ने एक तारे के बाद बहुत से तारों के उदय को 'वह आत्म और यह जग दर्शन' कहकर 'एकोऽहं बहुस्यामि' की दार्शनिक मान्यता को भी प्रतिपादित कर दिया है। इसी तरह 'नौका विहार' में भी कवि ने ग्रीष्मकालीन

गंगा का एक तापस बाला के रूप में भावभीना चित्रण करते हुए अंत में जगत की शाश्वतता का स्पष्ट संकेत किया है।

पंत का लगाव प्रकृति के कोमल और मनोरम स्वरूप के प्रति ही अधिक रहा है। लेकिन कभी-कभार इनकी दृष्टि यथार्थ से प्रेरित होकर प्रकृति के कठोर रूप की ओर भी गयी है। वर्षाकालीन रात्रि का एक चित्र है :

पपीहों की यह पीन पुकार/ निर्झरों की भारी झरझर/
झींगुरों की झीनी झनकार/ घनों की गुरू गंभीर घहर/
बिंदुओं की छनती छनेकर/ दादुरों के वे दुहरे स्वर।

इसी प्रकार वायु वेग से झकझोरे गए भीमाकार नीम के वृक्ष की स्थिति को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

झूम-झूम झुक-झुक कर/ भीम नीम तरू निर्भर/
सिहर-सिहर थर् थर् थर्/ करता सर् मर्/ चर् मर्।

अपनी 'कलख' शीर्षक कविता में पंत जी ने संध्या का यथार्थ, किंतु अत्यंत भावप्रवण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

बांसों का झुरमुट -/ संध्या का झुटपुट -/
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ/ टी वी टी - टुट् टुट्!
ये नाम रहे निज घर का मग
कुछ भ्रमजीवी धर डगमग डग,
माटी है जीवन! भारी पग!

यहाँ बांसों के झुरमुट में चहकती हुई चिड़ियों और भारी पग तथा उदास मन से अपने घरों को लौटने वाले मज़दूरों की विरोधपूर्ण स्थिति के माध्यम से कवि ने संध्या का अत्यंत व्यंजक स्वरूप प्रस्तुत किया है।

11.2.1.2 नारी सौंदर्य और प्रणय भाव

प्राकृतिक सौंदर्य की भाँति ही कविवर पंत की दृष्टि नारी-सौंदर्य की ओर भी आकृष्ट हुई है। 'पल्लविनी' में संगृहीत 'ग्रंथि' 'आँसू' और 'नारी रूप' शीर्षक कविताएँ पंत के प्रेम और उनकी नारी विषयक मान्यताओं के ज्वलंत दस्तावेज हैं। अपनी 'आंसू' शीर्षक कविता में इन्होंने लिखा है :

वियोगी होगा पहिला कवि, आह से उपजा होगा गान,
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

इस कविता में कवि ने प्रकृति के अनन्त विस्तार में अपनी प्रेमजनित व्यथा को ही व्याप्त चित्रित किया है। वायु, बादल, आकाश, इन्द्रधनु आदि प्रकृति के तमाम उपकरण इनकी विरह वेदना को उद्दीप्त करते हैं। इस वरदान स्वरूप व्यथा में कल्पना की ऊँची उड़ान के कारण लौकिक प्रेम की यथार्थ भूमि का परित्याग कर पंत की दिव्यता का आदर्श ही अधिक प्रस्तुत हुआ है। छायावादी कवियों में प्रसाद और महादेवी का प्रेम-दर्शन भी ऐसा ही रहा है। इस कविता में पंत ने महादेवी के स्वर में स्वर मिलाकर लिखा है :

विरह है अथवा यह वरदान,
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है।

लेकिन यहाँ पंत की प्रमुख चिंता यह है कि :

हाय किसके, उर में उतारुँ अपने उर का भार!
किसे अब दूँ उपहार गूँथ यह अश्रुकणों का हार!!
.....

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब, हृदय! इस आह्वान को!
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं,
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को!!

पंत की छायावादी युग की इन कविताओं में प्रणय वेदना के अनेकशः ऐसे चित्र मिलेंगे, जिनमें शारीरिक सम्पर्क या मांसलता की अपेक्षा सूक्ष्मता और दिव्यता के दर्शन होते हैं। अपनी 'नारी रूप' शीर्षक कविता में पंत ने नारी सौंदर्य और उसके गुणों का गान करते हुए अंत में उसे - 'देवि! माँ! सहचरि/प्राण!' की संज्ञा से संबोधित किया है। 'स्वर्ण किरण' (1947) तक आते-आते इनका प्रेम पूर्णतः अशरीरी और अलौकिक रूप ग्रहण कर लेता है :

देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की।

लेकिन अपनी यौवनावस्था के प्रथम चरण में रचित पंत की बहुत सी कविताएँ इनकी निजी प्रेमानुभूति पर आधारित हैं। इस विषय में डॉ0 नगेन्द्र का यह कथन सही प्रतीत होता है कि 'हाँ, इतना अवश्य प्रतीत होता है कि उनकी 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'ग्रंथि' शीर्षक कविताएँ किसी विशेष प्रेरणा-भार से दब कर लिखी हुई हैं और इनमें आत्मजीवन संबंधी कुछ स्पर्श अवश्य हैं।' (सुमित्रानंदन पंत, पृष्ठ 80) वस्तुतः ये तीनों कविताएँ प्रसाद के 'आँसू' की भाँति प्रणय-काव्य हैं, जिनमें संयोग की काल्पनिक स्मृतियाँ विरह-व्यथा के रूप में अत्यंत विह्वल भाव से अभिव्यक्त हुई हैं। सब मिलाकर पंत की प्रणय-भावना और नारी विषयक दृष्टि अन्य छायावादी कवियों की तरह सूक्ष्म और मानसिक अधिक है, जिसमें स्थूल शारीरिक आकर्षण का सर्वथा अभाव है।

11.2.1.3 कल्पना की ऊँची उड़ान

प्रकृति के प्रति गहन आकर्षण और प्रणयानुभूति की तीव्रता के साथ ही छायावादी काव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान अपना विशेष महत्व रखती है। चाहे प्रकृति का क्षेत्र हो या प्रणय का - छायावादी कवियों ने अपनी स्वाधीनता या मुक्ति की भावना की पूर्ति स्वच्छंद कल्पना के माध्यम से ही की है। कल्पना के सहारे इन कवियों ने प्रकृति और प्रणय के संबंध में अनेक जिज्ञासाएँ प्रकट करते हुए नवीनतम उद्भावनाएँ की हैं। इस स्वच्छंद कल्पना ने जहाँ छायावादी काव्य को स्वप्नजीवी बनाया वहीं स्थूल वस्तुओं और घटनाओं से परे जाकर उनके अनेक संभावित रूपों का उद्घाटन भी किया और उन्हें चेतन तथा सजीव बनाया। पंत के काव्य में कल्पना की यह भूमिका विशेष रूप में रेखांकित हुई है। इसके लिए 'बादल' शीर्षक कविता का उदाहरण लिया जा सकता है :

सुरपति के हम ही हैं अनुचर/ जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना/ चातक के चिर जीवनधर।

यहाँ बादल एक सजीव सत्ता के रूप में अपना परिचय देता है, लेकिन आगे चलकर कवि की कल्पना के घटाटोप में वह दिव्य रूप धारण कर लेता है :

धीरे-धीरे संशय-से उठ, बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह से, फैल लालसा से निशि-भोर।
इन्द्रचाप-सी व्योम-भृकुटि पर, लटक मौन चिन्ता से घोर,
घोष भरे विप्लव-भय से हम, छा जाते द्रुत चारों ओर।

बादल का संशय की तरह धीरे-धीरे उठना, अपयश की भांति शीघ्र चारों तरफ फैल जाना, आकाश के हृदयों में मोह की तरह उमड़ना, लालसा की तरह व्याप्त होना, इन्द्रधनुष के समान आकाश की भौहों पर मौन चिंता की तरह लटकना और विप्लव की घनघोर आवाज़ से उत्पन्न भय की तरह चारों ओर फैल जाना, उसे एक सजीव सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है। संशय, अपयश, मोह, लालसा, चिन्ता, भय आदि अमूर्त और सूक्ष्म भावों के माध्यम से यहाँ बादल के मूर्त रूप को अत्यंत भाव प्रवण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। छाया, संध्या, चांदनी, प्रातः आदि प्राकृतिक स्थितियों के चित्रण मे भी पंत ने अपनी इस कल्पना प्रवणता का अनूठा परिचय दिया है।

प्रकृति के कल्पना प्रसूत सम्मूर्तन के साथ पंत ने मानुषी सौंदर्य का भी अत्यंत कल्पना प्रवण चित्रण किया है। 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता में प्रिया की स्मृति का एक चित्र है :

मृदुल मधुपों का मृदु मधुमास, स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर विलास, विश्व सुषमा का ही संसार,
दृगों में छा जाता सोल्लास, व्योम बाला का शरदाकाश,
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान, प्रिये, प्राणों की प्राण।'

यहाँ कवि ने प्रिया की स्मृति को कल्पना के जिस लोक में संचरित कराया है, वह अपने आप में अद्‌भुत है। अभिव्यक्ति की यह कल्पना प्रवण पद्धति छायावाद की लाक्षणिक-शैली के रूप में विख्यात है। प्रणय-भावना की अभिव्यक्ति में भी पंत जी ने कल्पना का प्रायः इसी तरह उपयोग किया है। 'ग्रंथि' शीर्षक कविता से प्रणय-वेदना का एक कल्पना चित्र यहाँ दर्शनीय है :

आज मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ, वेदना के इस मनोरम विपिन में,
विजय छाया में द्रुमों की, योग सी, विचरती है आज मेरी वेदना।
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी, ऊँघती है नींद-सी मेरी स्पृहा,
ललित लतिका के विकंपित अधर में, कांपती है आज मेरी कल्पना।

छायावाद के अन्य कवियों की भाँति ही यहाँ वेदना से संबद्ध पंत की कल्पना कुछ मूर्त-अमूर्त अप्रस्तुतों की योजना तक सीमित कल्पना नहीं है। इसमें वस्तुगत यथार्थ के प्रति आग्रह कम और वेदना के भावावेग पर अधिक जोर है। छायावादी अन्य कवियों की भाँति ही पंत ने भी कल्पना के साथ स्मृति को कुशलता से संयुक्त किया है। स्मृति का संबंध पूर्व अनुभव से होता है, जिसे कल्पना एक नया रूप-रंग प्रदान करती है। पंत की छायावादी दौर की आरंभिक कविताओं में स्मृतिमूलक कल्पना-चित्रों की बहुलता है। इसे 'ग्रंथि' के साथ ही 'उच्छ्वास', 'आँसू' कविताओं में भी देखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पंत के प्रथम चरण की कविताओं में छायावाद की स्वच्छंदतावादी अंतर्बाह्य विशेषताएँ अपनी समग्रता के साथ वर्तमान हैं। अतः इन्हें प्रसाद की भाँति ही छायावाद का प्रतिनिधि कवि स्वीकार किया गया है।

11.2.2 द्वितीय चरण : प्रगतिवादी जीवन-बोध

'गुंजन' (1932) में पंत 'सुंदर है विहग, सुमन सुंदर/ मानव तुम सबसे सुंदर' लिखकर छायावाद के कल्पना लोक से मुक्ति का आभास दे चुके थे। लेकिन 'युगांत' (1936) में इन्होंने बाकायदे अपने छायावादी चरण के अंत की घोषणा की है। इस घोषणा का विस्तृत दस्तावेज इनके द्वारा संपादित 'रूपाभ' पत्रिका का पहला अंक (1938) है। इसमें छायावाद के स्थान पर प्रगतिवाद की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए पंत ने लिखा है, 'कविता के स्वप्न-भवन को छोड़कर हम इस खुरदुरे पथ पर क्यों उतर आए, इस संबंध में दो शब्द लिखना आवश्यक हो जाता है। इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं।... अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। ... यदि हमें सत्य के प्रति वास्तविक उत्साह है तो हम अपने महान उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं कर सकते। .... हमारा निश्चित ध्येय प्रगति की शक्तियों को सक्रिय योग देना होगा।' (रूपाभ, प्रथम अंक, पृष्ठ 63-64) इस कथन से स्पष्ट है कि पंत एक कवि के रूप में अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह की भावना से प्रेरित होकर प्रगतिवादी साहित्यांदोलन से जुड़े।

अपनी युगानुकूलता और प्रगतिवादिता के संकेत पंत ने अपनी 1934-36 में रचित कविताओं के संग्रह 'युगांत' में ही दे दिए हैं। पुराने युग की समाप्ति और नये युग की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए कवि ने युगवाणी में लिखा है :

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण,
हिम-ताप-पीत मधुवान-भीत, तुम वीतराग जड़ पुराचीन;
निष्प्राण विगत-युग मृत विहंग, जग-नीड़ शब्द औ श्वासहीन,
च्युत अस्त-व्यस्त पंखों से तुम, झर झर अनंत में हो विलीन।

कवि इस संग्रह में छायावादी पतझर के बाद नयी वासंती प्रकृति का आह्वान करने लगता है। पतझर के साथ ही विहग-समूह भी उसके लिए नवयुग के स्वागतकर्ता बन जाते हैं। रात के अंधकार के बाद उषा की लालिमा में वह कोकिल का आह्वान करते हुए कहता है :

गा कोकिल बरसा पावक कण, नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन, पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।

इस प्रकार की कविताओं में पंत अपनी छायावादी रचना-दृष्टि से विदा होने की सूचना मात्र न देकर दत्तचित नये के स्वागत के लिए तमाम सारे उपकरणों को एकत्र करने में भी दत्तचित्त हुए हैं। 'युगांत' में इनकी वैयक्तिकता सामाजिकता में परिवर्तित हो गयी है। 'युगवाणी' में इनका नवयुग साम्यवादी युग में रूपांतरिता होता दिखाई देता है। 'युगवाणी' की कविताओं में पंत ने मार्क्स के ऐतिहासिक और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सैद्धांतिक और व्यावहारिक महत्व का प्रतिपादन भी किया है। इनके अनुसार मार्क्स ने अपने वैज्ञानिक-सामाजिक विश्लेषण से पहली बार इस सच्चाई को उजागर किया है कि मानव-सभ्यता का इतिहास केवल कुछ शूरवीरों की कहानी; राजाओं की विजय लालसा या सुंदरियों का भृकुटि-विलास न होकर साधारण जनता के कठोर श्रम का फल है :

साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुंदुभि से घोषित
प्रकृति विजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित।
.....
धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर!
- मार्क्स के प्रति

अपनी 'भूतदर्शन कविता में पंत ने मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी-दर्शन के महत्व को स्वीकार कर राष्ट्र, जाति, आदर्श, धर्म को मानव-जीवन के लिए स्वर्ण-पाश (सुनहला बंधन) सिद्ध करते हुए साम्यवाद को सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति का मार्ग माना है :

कहता भौतिकवाद, वस्तु जगत का कर तत्वान्वेषण-
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर्दर्पण।
.....
साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिनंदन।

लेकिन पंत ने साम्यवाद और भौतिकवाद को अपनी सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मवादी बोध की परिधि में ही स्वीकार किया। उसे संपूर्ण मानव-सत्ता की प्रतिष्ठा या मानव के सम्पूर्ण उत्थान का एकमात्र दर्शन नहीं माना :

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद,
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य-योजना है अविवाद।
- समाजवाद और गांधीवाद,

फलस्वरूप अपनी अंतिम परिणति में पंत भौतिकवाद के साथ गांधीवाद और आध्यात्मवाद के समन्वय में जुट जाते हैं। संकीर्ण भौतिकवादियों पर अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए इन्होंने लिखा है :

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चाम?
' संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति,

'युगवाणी' में पंत ने वर्ग-विभाजित सामाजिक विषमता को ध्यान में रखकर भारतीय समाज का वर्ग-विश्लेषण भी किया है। इस क्रम में उन्होंने अपनी 'धनपति' शीर्षक कविता में पूँजीवादी शोषण की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए लिखा है :

वे नृशंस हैं : वे जन के श्रमबल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित,
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित।

मध्य-वर्ग पंत जी की दृष्टि से 'गत संस्कृति का दास' और 'विचित्र विश्वास विधायक' लगता है। बूर्जुआ बुद्धिजीवी को वे 'भोगशील, धनपतियों का स्पर्धी, आत्मबद्ध, संकीर्ण हृदय, वाक्पटु, अपनी बुद्धि पर घमंड करने वाला अत्यंत निर्बल मानते हैं। अपनी 'कृषक' शीर्षक कविता में इन्होंने किसान को इस रूप में प्रस्तुत किया है :

युग युग का यह भारवाह, आकटि नत मस्तक,
वज्र मूढ़, जड़भूत, हठी, वृष-बांधव कर्षक
ध्रुव ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का वह रक्षक!
कर जर्जर, ऋणग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू-धन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख का जो कारण।

ऐसे कृषक समाज के उद्धार को इन्होंने मात्र सद्भावनापूर्ण कल्पना मानते हुए सामूहिक कृषि द्वारा ही उसके कायाकल्प में विश्वास प्रकट किया है। अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संगठनबद्ध आंदोलन करने वाली किसान-शक्ति के वास्तविक महत्व को पंत जी ने नज़रअंदाज़ किया है। 1936-37 तक अवध के किसानों ने, विशेषकर पंत की नगरी इलाहाबाद के आस-पास के किसानों ने जो क्रांतिकारी माहौल पैदा किया था, उससे भी पंत जी अनभिज्ञ लगते हैं। रूस के सामाजिक रूपांतरण में किसानों की भूमिका और चीन की क्रांति में बढ़-चढ़ कर भाग ले रहे किसानों का वर्गचरित्र भी इनके सामने नहीं था। अतः लगता है कि इनका वर्ग विश्लेषण केवल मार्क्सवादी दर्शन के सैद्धांतिक चिंतन पर ही आधारित था।

'युगांत' की श्रमजीवी शीर्षक कविता में पंत ने सर्वहारा के रूप में मज़दूरों का अत्यंत भव्य एवं गौरवपूर्ण चरित्र अंकित किया है। इन्होंने मज़दूरों को 'कर्दम (कीचड़) पोषित' होने पर भी 'पवित्र', 'शोषित' होने पर भी निर्माता, 'अशिक्षित' होने पर भी शिक्षितों से अधिक शिक्षित, दृढ़ चरित्र, दुख सहिष्णु, अभयचित्त आदि बताते हुए अंत में लिखा है :

लोक क्रांति का अग्रदूत, वरवीर, जनादृत,
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शोषित!
चिर पवित्र वह : भय, अन्याय, घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी, - पावन श्रम से प्रक्षालित।

यह सही है कि सर्वहारा के रूप में श्रमिक-वर्ग समाज का सबसे क्रांतिकारी वर्ग होता है, लेकिन भारतीय परिस्थितियों में औद्योगिक मज़दूरों की संख्या इतनी कम थी कि उनसे किसी बड़ी क्रांति की आशा नहीं की जा सकती थी। उस समय ग्रामीण जनता का एक बहुत बड़ा हिस्सा कृषि मज़दूर के रूप में अपना जीवन बिता रहा था। बहुत से स्थानों पर कृषक आंदोलन ने उग्र रूप भी धारण किया था। लेकिन यह ठोस वास्तविकता पंत जी के सामने नहीं थी। इसलिए वे अपनी 'घननाद' (हथौड़े का गर्जन) कविता में भी हँसिए की भूमिका को नज़रअंदाज कर, हथौड़े की आवाज़ से निकलने वाली चिनगारी के आधार पर श्रमिकों का आह्वान करते हैं :

अग्नि स्फुलिंगों का कर चुंबन/ जाग्रत करता दिग् दिगंत घन/
जागो श्रमिकों, बनो सचेतन/ भू के अधिकारी हैं श्रमजन/
मांसपेशियाँ हृष्ट-पुष्ट घन/ बटी शिराएँ, श्रम बलिष्टतन/
चिर लावण्यपूर्ण श्रम के कण/ ठड्., ठड्.-ठन्।

वस्तुतः 'युगवाणी' में पंत ने अपने को छायावादी संस्कारों से सायास मुक्त करने का प्रयास करते हुए 'ग्राम्या' की रचना के लिए अपने को तैयार किया है। अपनी 'ग्राम' कविता में गाँव के सामाजिक ऐतिहासिक महत्व को इन्होंने इस प्रकार रेखांकित किया है :

वृहद् ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वंस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनों की करूण-कथा का जीवित,
युग-युग का इतिहास सभ्यताओं का इसमें संचित,
संस्कृतियों की ह्रास-वृद्धि जन शोषण से रेखांकित।

मानव जीवन के वृहद् ग्रंथ का साधारण जनों की करूण कथा से परिपूर्ण एक उपेक्षित पृष्ठ के रूप में गाँव का स्मरण करते हुए पंत ने ग्राम्या में घोषणा की है :

देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से,
सोच रहा हूँ जटिल जगत पर, जीवन पर जन मन से।
.....
मनुष्यत्व के मान वृथा, विज्ञान वृथा रे दर्शन,
वृथा, धर्म, गणतंत्र, - उन्हें यदि प्रिय न जीव जन जीवन!

- ग्राम दृष्टि

अपनी इस ग्राम दृष्टि को पंत जी ने 'ग्राम कवि', 'कवि किसान', 'ग्राम चित्र', 'ग्राम' आदि कविताओं के माध्यम से साकार किया है। 'ग्राम युवती', 'ग्राम नारी', 'कठपुतले', 'भारत ग्राम', 'ग्राम देवता', 'भारत माता' आदि कविताओं में कवि ने अपनी अशेष सहानुभूति और ममता से परिपूर्ण गाँव और ग्रामीण जनता के प्रति श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है। लेकिन गाँवों की वास्तविक जीवंतता और ग्रामवासियों की यथार्थ धड़कन 'धोबियों का नृत्य', 'कहारों का रूद्र नृत्य', 'चमारों का नाच', 'नहान' आदि कविताओं में ही प्राप्त होती है। अपने जीवन के विषाद को गाँव के पद्दलित लोग किस तरह फूँक मार कर उड़ा देते हैं, इसका यथार्थ चित्र कवि ने 'चमारों का नाच' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया है। नाच-मण्डली का मसखरा (विदूषक) अपने मन और जातीय जीवन की सारी कसक को निकालते हुए लोगों का किस प्रकार मनोरंजन करता है, इसकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है :

जमींदार पर फब्ती कसता
बाम्हन, ठाकुर पर हैं हँसता
बातों में बक्रोक्ति काकु औ'
श्लेष बोल जाता वह सस्ता
कल-काँटा को कह कलकत्ता
x x x
ये समाज के नीच अधम जन,
नाच कूद कर बहलाते मन
वर्णों के पद्दलित चरण ये
मिटा रहे निज कसक और कुढ़न
कर उच्छृंखलता उद्धतपन।

पंत ने अपनी 'ग्राम्या' में रूढ़ियों, अंधविश्वासों, वर्णव्यवस्था, जातीय ऊँच-नीच की भावना, कर्मफल और भाग्यवाद को कृषक जीवन का अभिशाप बताते हुए किसानों के सहज और छल-कपट-रहित जीवन के प्रति गहरी सहानुभूति जगाने का उल्लेखनीय प्रयास किया है।

वस्तुतः 'ग्राम्या' पंत के पूर्णतः परिवर्तित भाव बोध की वाहिका है। इसमें उनकी प्राकृतिक सौंदर्य विषयक मान्यता ही नहीं, नारी और प्रणय विषयक मान्यताओं में भी आमूल परिवर्तन दिखायी देता है। 'संध्या के बाद', 'खिड़की से', 'स्वीट पी', 'पतझर', 'आंगन से', 'गुलदावदी', 'नक्षत्र' आदि प्रकृति से संबंधित कविताओं के साथ ही 'ग्राम नारी', 'ग्राम युवती', 'वे आंखें', 'स्त्री', 'आधुनिका', 'मज़दूरनी के प्रति', 'नारी' आदि कविताओं में इस तथ्य को आसानी से देखा जा सकता है।

'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में व्यक्त प्रगतिशील चेतना के बाद 'स्वर्ण किरण' (1947) और 'स्वर्णधूलि' (1948) से लेकर 'लोकायतन' (1964) तक पंत की काव्य-यात्रा का जिस दिशा में विकास हुआ है, उसे लेकर उनके आलोचकों में पर्याप्त विवाद है। इस विवाद में इनकी प्रगतिशीलता पर भी प्रश्न-वाचक चिह्न लगाया गया है। इस दृष्टि से पंत की रचना-प्रक्रिया के संबंध में कुछ तथ्यों का संकेत करना आपके लिए उपयोगी होगा। इसके लिए 'ग्राम्या' के संक्षिप्त निवेदन को आधार बनाया जा सकता है। निवेदन में पंत ने लिखा है, 'इसमें (ग्राम्या में) पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम जीवन में मिलकर, उसके भीतर से, ये (कविताएँ) अवश्य नहीं लिखी गयी हैं। ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।'

पंत के उपर्युक्त कथन से दो तथ्य उभर कर हमारे सामने आते हैं। पहला तो यह कि इन्होंने ग्रामीण जीवन से घुल-मिल कर 'ग्राम्या' की रचना नहीं की है, अतः ग्रामीणों के प्रति व्यक्त सहानुभूति मात्र बौद्धिक सहानुभूति है। लेकिन कल्पनाश्रित प्रसरणशील सहानुभूति के माध्यम से पंत ने ग्राम और ग्रामीण जीवन के जो मार्मिक चित्र उपस्थित किए हैं, उनके उद्धार की जो शुभकामनाएँ व्यक्त की हैं,

उससे इनकी प्रगतिवादिता पर कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता। इस संबंध में जो दूसरा विचारणीय तथ्य है, वह यह कि वर्तमान दुर्दशाग्रस्त ग्रामीण जीवन के साथ घुल मिलकर साहित्य की रचना करना 'प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।' यहाँ पंत की 'प्रतिक्रियात्मक साहित्य' संबंधी अवधारणा विचारणीय है। इस दृष्टि से देखें तो प्रेमचंद के साथ ही नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि बहुत सारे प्रगतिशील साहित्यकारों द्वारा लिखा गया साहित्य प्रतिक्रियात्मक कहा जाएगा। क्योंकि इन लेखकों-कवियों ने ग्रामीण जनजीवन के साथ एकमेक होकर अपनी रचनाएँ की हैं। साहित्य के संबंध में पंत की यह दृष्टि संकुचित और दोषपूर्ण मानी जा सकती है। क्योंकि समाज और सामाजिक जीवन के प्रति कलाकार की स्वस्थ मानसिक प्रतिक्रियाएँ ही उसके सामाजिक दायित्व के महत्व को रेखांकित करती हैं। समाज और सामाजिक जीवन से कटकर केवल कल्पना के आधार पर साहित्य की रचना करना अंततः कलाकार की कमज़ोरी सिद्ध करता है। अपनी इस कमज़ोरी के कारण ही पंत 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' जैसी रचनाओं के बावजूद 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्णधूलि' से लेकर 'लोकायतन' तक की यात्रा करते हैं। इनकी इस प्रकृति पर आक्षेप करते हुए नागार्जुन ने लिखा है :

इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत,
कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है,
.....
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो,
शीर्ण संस्कृति को अगर सप्राय करना चाहते हो,
अन्यथा शिमला कि नैनीताल में
ललित 'लोकायतन' रचोगे।

देश की स्वाधीनता के बाद पंत की परिवर्तित रचनादृष्टि को दृष्टिहीन दार्शनिकता के नाम पर प्रगतिवादी खेमें से आलोचना का विषय बनाया गया। देश के अत्यंत विषम और कोलाहलमय वातावरण में पंत की समन्वयवादी दृष्टि को व्यवस्था का पोषक माना गया। इस पर आक्षेप करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने 'कांग्रेस के राज में' शीर्षक कविता में लिखा है :

कांग्रेस के राज में, आयो नहीं बसंत।
अपत कटीली डार के गावत हैं गुन पंत।।

भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति से चार-छह वर्ष पूर्व से लेकर चार-छह वर्ष बाद तक पंत आलोचना प्रत्यालोचना के दायरे में हैं। इनके काव्य से संबंधित अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की आलोचना पूरे वेग से प्रवाहित हुई। लेकिन पंत इनसे प्रायः अछूते रहकर अपने रचनाकर्म में निरत रहे।

यहाँ पंत की रचना-प्रक्रिया पर एकबार विचार कर लेना पर्याप्त उपयोगी होगा। यह एक वास्तविकता है कि पंत जब भी किसी विषय पर रचनारत होते हैं तो अपने मनः लोक के इर्द-गिर्द ऐसा ताना-बाना बुन देते हैं कि कोई अन्य भाव या विषय उसमें प्रवेश ही नहीं कर पाता। उनकी छायावाद युगीन अधिकांश कविताओं के साथ 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना में इस तथ्य को समान रूप से देखा जा सकता है। आत्म-चेतना के आधार पर व्यापक समन्वय की भावना से प्रेरित पंत 'स्वर्ण किरण' से लेकर लोकायतन' तक समाज की बाहरी उथल-पुथल से तटस्थ रहकर जिस मानवतावाद या लोक कल्याण की कल्पना को उजागर करते हैं, वह लोक जीवन के यथार्थ स्पर्शों से प्रायः अछूती रह कर वास्तविक जीवन के समानांतर एक अलग कला जगत की सृष्टि करती है। इस तथ्य को हम उनके तीसरे विकासचरण में आसानी से परिलक्षित कर सकते हैं।

11.2.3 तृतीय चरण : अरविंद दर्शन पर आधारित आध्यात्मिक नव-मानवतावाद

अरविंद दर्शन से प्रभावित होकर पंत की चेतना प्रत्यावर्तित होकर (पुनः वापस लौटकर) अपने प्रथम चरण की चेतना से जुड़ जाती है। इनके इस तीसरे चरण के विकास को आलोचकों ने 'स्वर्ण काव्य' की संज्ञा दी है। इसके अंतर्गत स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अतिमा, रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण, वाणी और किरण-वीणा जैसी काव्य कृतियाँ आती हैं। 1937 से लेकर 'स्वर्ण काव्य' के सभी संग्रहों की प्रतिनिधि रचनाएँ 'चिदम्बरा' शीर्षक से 1958 में प्रकाशित हुई। इस श्रृंखला की अगली कड़ी के रूप में, थोड़ा परिवर्तित रूप में, 'कला और बूढ़ा चांद' तथा 'लोकायतन' की भी गणना की जा सकती है। 'स्वर्ण' शब्द का प्रयोग पंत ने चेतना के प्रतीक के रूप में किया है, जिसका आधार इनकी

आध्यात्मिक चेतना ही है। इस चेतना का केंद्र में रखकर, अरविन्द दर्शन के प्रकाश में पंत ने व्यापक समन्वय द्वारा नव मानवतावाद का प्रतिपादन अपने काव्य-विकास के तीसरे चरण में किया है।

महर्षि अरविन्द का आदर्श रहा है, भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय/ जीवात्मा और जगत की एकता के साथ ही उसे ब्रह्म की कला मान कर अरविन्द ने तीनों में व्याप्त एक अखंड और शाश्वत चेतना का प्रतिपादन किया। इसके साथ ही उन्होंने भौतिकता और आध्यात्मिकता को ब्रह्म का दो परिपार्श्व (अंग) स्वीकार कर दोनों के बीच समुचित समन्वय को मानव कल्याण के लिए आवश्यक सिद्ध किया। वैसे 'युगात' में भी पंत का समन्वयवादी रूप सामने आता है। इसके अंतर्गत वे कभी गांधीवाद में 'मनुष्यत्व का तत्व' और साम्यवाद में 'सामूहिक विकास' की योजना देखते हैं तो कभी संकीर्ण भौतिकवादियों पर अपना आक्रोश इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे क्या संवार कर चाम?

लेकिन अरविंद दर्शन के प्रभाव में आने के बाद पंत को भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय का एक ठोस आधार प्राप्त हो गया। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में अत्यंत तन्मयता के साथ पंत इस दिशा में सक्रिय हुए हैं। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में भी इन्होंने अतिभौतिकवाद का निषेध करते हुए आत्म सत्य और वस्तु सत्य के समन्वय पर बल दिया है। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उस काल खंड की रचनाओं में भौतिक सत्य का ही प्राधान्य है। अपने 'स्वर्ण काव्य' युग में वे वस्तु-सत्य से आत्म सत्य की ओर, बाह्य से अंतर्मन की ओर झुक गए हैं:

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अंतर्मन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन।

लेकिन अपने इस तीसरे चरण के आरंभिक दौर में भी कवि ने भूतवाद या संसार के भौतिक पक्ष की नितांत उपेक्षा नहीं की है :

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज-तन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरंतन।

यहाँ तन, मन और हृदय के समन्वय की महत्ता पर बल अवश्य दिया गया है, लेकिन इस कार्य को चित् की निर्मलता पर छोड़कर उसके कारगर उपाय से पल्ला झाड़ लिया गया है। इसलिए कवि का यह मत भविष्य की किसी काल्पनिक संभावना पर आश्रित हो जाता है :

क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत घन,
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन।
जाति वर्गों से निरख जन
अमर प्रीति प्रतीति में बँध
पुण्य जीवन करे यापन।
औ' धरा हो ज्योति पावन।

इस तरह की शुभकामनाएँ तो प्राचीन काल से भारतीय ऋषि-मुनि प्रकट करते आए हैं। 'वासुधैव कुटुंबकम्' और 'सर्वेभवन्तु सुखिन', 'सर्वेसंतु निराभय', उनका आदर्श रहा है। लेकिन व्यवहार में अब तक ऐसा हुआ नहीं। अतः अंतश्चेतना के आधार पर समन्वय के जिस विराट आयोजन में पंत का 'स्वर्ण काव्य' सक्रिय हुआ है, वह केवल दिवा-स्वप्न बन कर रह जाता है। इस समन्वय-साधना में और आगे बढ़ कर कवि भौतिक जीवन से बहुत ऊँचे उठकर परमतत्व तक पहुँच जाता है :

अन्न, प्राण, मन, आत्मा केवल
ज्ञान-भेद सत्य के परम,
इन सबमें चिर व्याप्त ईश रे,
मुक्त सच्चिदानंद चिरंतन।

अनेकता में एकता का यह प्रयास आध्यात्मिक दृष्टि से तो संभव है लेकिन भौतिक दृष्टि से इसे युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता। कम-से-कम इस औपनिषदिक एकता से व्यक्ति और समाज की एकता या व्यक्ति के अंतर्बाह्य की एकता न तो अब तक हो सकी है और न भविष्य में ही इसकी संभावना है।

अपने 'स्वर्ण काव्य' में पंत जी ने कुछ सामाजिक समस्याओं को भी लिया है, जिनमें 'पतिता', 'परकीया' शीर्षक नारी विषयक कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'पतिता' शीर्षक कविता है :

क्रूर लुटेरे हत्यारे कर गए, बहू को नीच कलंकित।
फूटा करम, धरम भी लूटा, शीश हिला रोते सब परिजन।

लेकिन बहू का पति केशव उसे सप्रेम ग्रहण करता हुआ कहता है :

मन से होते मनुज कलंकित, रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित पावन है, तुमको रहने दूँगा मैं न कलंकित।

एक व्यक्ति के ऐसा करने मात्र से नारी युक्ति की समस्या का समाधान नहीं हो जाता। इसी प्रकार 'परकीया' के संदर्भ में दाम्पत्य जीवन की व्याख्या करते हुए कवि ने लिखा है :

पति-पत्नी का सदाचार भी, नहीं मात्र परिणय से पावन।
काम विरत यदि दम्पत्ति जीवन, भोग मात्र का परिणय साधन।
पंकिल जीवन में पंकज-सी, शोभित आप देह से ऊपर।

इस से स्पष्ट है कि अंतश्चेतना से प्रेरित पंत का 'स्वर्ण काव्य' किस रूप में अपने लोकमंगल के दायित्व को पूरा करता है। प्रेम एक भावना मात्र का न होकर सामाजिक व्यवहार भी है, जिसे विवाह संस्था द्वारा नियंत्रित किया जाता है। 'काम विरत दम्पत्ति जीवन' को आदर्श और 'परिणय (विवाह) को 'भोग मात्र का साधन' मानना पंत की अन्तश्चेतना के ज्वार की अराजकता ही कहा जा सकता है। 'कामायनी' में प्रसाद ने भी प्रेम के लगभग इसी रूप को वरीयता देते हुए लिखा है :

तुम हो कौन, मैं हूँ क्या, इसमें है क्या धरा सुनो,
जीवन जलधि रहे चिर चुंबित मेरे क्षितिज उदार बनो।

यहाँ मनु श्रद्धा से कहते हैं कि 'तुम कौन हो मैं क्या हूँ, इसका कोई मतलब नहीं है। तुम मुझे सुंदर लगती हो और मैं तुम्हें सुंदर लगता हूँ - इतना ही पर्याप्त है। इस प्रकार सौंदर्य को प्रेम का क्षितिज मान लेना, उसे सामाजिकता से परे, सामाजिक नैतिकता से परे सिद्ध करना है। प्रसाद की इसी मान्यता से प्रेरित मनु श्रद्धा और इड़ा में कोई अंतर नहीं करता। इड़ा, जो उसकी पुत्री के समान है, उसे भी अपने प्रेमपाश में आबद्ध करना चाहता है। इस स्थिति को देखकर ही कुछ आलोचकों ने पंत पर अभारतीयता का आरोप लगाया है।

अपने ऊपर अभारतीयता के आक्षेप का उत्तर देते हुए पंत ने 'स्वर्ण धूलि' की एक 'ग्रामीण' शीर्षक कविता में लिखा है :

भारतीय ही नहीं बल्कि मैं
हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर।'

लेकिन वास्तविक विडम्बना यह है कि अपने 'स्वर्ण-काव्य' तथा 'कला और बूढ़ा चाँद' से लेकर 'लोकायतन' तक पंत दिनरात खटकर भी दो जून की रोटी न जुटा पाने वाली ग्रामीण जनता के उद्धार का कोई कारगर उपाय नहीं प्रस्तुत कर सके हैं।

'कला ओर बूढ़ा चाँद' पंत का 1959 में प्रकाशित काव्य-संग्रह है जो उनके 'स्वर्ण-काव्य' की अगली कड़ी है। रचना-विधान की नवीनता के बावजूद उनका पुराना सत्य (बूढ़ा चाँद) इसमें नयी आशा और उमंग के साथ व्यक्त हुआ है। छंदों के बंधन से मुक्त गद्यात्मक शैली में रचित इस संग्रह की कविताएँ अपनी प्रतीक और बिम्ब योजना की दृष्टि से पर्याप्त सराही गयी हैं। 'मधुछत्र', 'खोज', 'अमृत क्षण', 'रिक्त मौन', 'अनुभूति', 'दृष्टि', 'यज्ञ', 'गीत खग', 'कोपलें', 'पाद पीठ', 'विकास', 'घर', 'दंतकथा', 'कीर्ति', 'सूर्यमन', 'नया प्रेम', 'करूणा', 'शील, 'आत्मानुभूति', 'अखंड', 'समाधान', 'भू पथ' आदि कविताएँ पंत के अंतश्चेतनावादी दर्शन को ही विभिन्न कोनों से व्याख्यायित विश्लेषित करती हैं। इस संग्रह की

अंतिम कविता 'सिंधु मंथन' द्वारा कवि ने जीवन को सुखमय बनाने के लिए स्वाधीन भारत की जनता को आत्ममंथन का संदेश दिया है। आत्ममंथन के द्वारा ही भारतीय जनता अपने प्रमाद, आलस्य, निरुद्यमता, भाग्यवाद, परम्पराप्रियता, भय, संदेह, घृणा, विद्वेष, आत्महीनता, पराजय, समाजविमुखता आदि की अंधेरी खोह (गुफा) से निकलकर 'मुक्त नील-आकाश' के नीचे स्वच्छ वायु में विचरण कर सकेगी। वस्तुतः इस उपदेश या इस तरह की मंत्रणा के पीछे पंत की ऋषि-दृष्टि बोल रही है, जो 'स्वर्ण- काव्य' की साधनावस्था से 'कला और बूढ़ा चाँद' में सिद्धावस्था तक पहुँच गयी है। इस दशा में पहुँच कर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया है कि वे जो कुछ कह रहे हैं, सत्य कह रहे हैं और सत्य के सिवा कुछ और नहीं कह रहे हैं।

इस तथ्य को आप 'कला और बूढ़ा चाँद' की कुछ कविताओं की संक्षिप्त व्याख्या से आसानी से समझ सकते हैं। इसके लिए 'आत्मानुभूति', 'एकमेव', 'अखंड', 'समाधान' और 'रूपांध' कविता को आधार बनाना अधिक संगत होगा। 'आत्मानुभूति' कविता में पंत आत्मानुभूति की सृजनशील भूमिका को रेखांकित करते हुए सर्जनकर्त्ता से कहते हैं कि तू अपने अछूते आंचल में रंगों के धब्बे, मधुपों के षट् पद् चिह्न न पड़ने दे, अर्थात् सांसारिक मोह-माया और लालसाओं से अपने को मुक्त रखे। इसका मतलब हुआ कि सांसारिकता-सामाजिकता से परे रहकर ही आत्मानुभूति सृजनशील बन सकती है। वे आत्मानुभूति पर आधारित सृजनशील प्रतिभा से निवेदन करते हैं कि नयी पीढ़ियाँ चाहे मधुरस की तीव्रता में आत्मविभोर हो जाएँ किंतु तुम अपनी अकुंठित शोभा को मत भूलना। जीवन विकासपथ है। जातियों, संस्कृतियों, सभ्यताओं का जन्म तेरे ही प्राणों का आवेश और रोमांच की सिहरन है। अतः तुझे जीवन-विकास के लिए साध्य-साधन में संगति लानी है। 'एकमेव' कविता में मात्र 'वह' ही है, उसी के साथ तादात्म्य की अनुभूति है। इसे पंत विराट सत्य, सार्वभौम सत्य या विश्व सत्य मानकर उसका वैयक्तिकरण करते हुए उसके माध्यम से अपनी लोक कल्याण की भावना का प्रतिपादन करते हैं। इनकी मान्यता है कि 'मैं, जो विश्वात्मा हूँ, उसे केवल बोध से देखने वालों ने विश्व-सत्य, विश्व कल्याण तथा लोक कर्म का निराकरण कर दिया है। जगत में जो कुछ है वह मेरी ही अभिव्यक्ति है :

'दिनरात/ मेरी भ्रू भंगिमाएँ नहीं, तो क्या है?

'अखंड' कविता इसी विश्वात्मा की अविभाज्यता और अखंडता को रेखांकित करती है। पंत की मान्यता है कि जीवन के विकास-क्रम में मूल्यों का जो थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त होता है, वह अत्यंत अल्प है। उसके द्वारा इस अखंड सत्य या शाश्वत सत्य का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। तुम किस मूल्य से/फेन को फेन कहते हो?' सत्य को 'मुझमें', 'तुझमें' विभक्त नहीं क्या जा सकता। 'बहु' में उसे विभक्त करना और 'बहु' द्वारा उसका मूल्यांकन करना वैसा ही है, जैसा :

'मैं मुँह में पानी भर/ जल फुहार बरसाऊँगा
करो तुम मूल्यांकन/ गिनो फुहार की बूँदें।'

सत्य का स्वरूप शब्दों की उस सापेक्षता से मुक्त है, जो द्वंद्वात्मक और द्वैताभ्त है। उसे शब्दों की इकाइयों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उसका आभास संकेतों और प्रतीकों द्वारा ही दिया जा सकता है :

मैं शब्दों की/ इकाइयों को रौंद कर/ संकेतों में/
प्रतीकों में बोलूँगा।

इस प्रकार पंत के अनुसार सत्य का एक अद्वितीय, असीम और शाश्वत रूप है, जो उसे अनिवर्चनीय बना देता है। इसे वैदिक शब्दावली में 'नेति-नेति' की संज्ञा दी गयी है। उससे परे कुछ है ही नहीं, जिससे उसकी तुलना की जा सके। वह विशुद्ध अनुभूति का विषय है। वह अनुभूति शाश्वत और क्षणिक दोनों को अभिव्यक्ति देती है :

मैं शाश्वत निःसीम का
गायक और सृजक रहा
तो -
साद्यः क्षणिक का भी
जनक हूँ।

'समाधान' कविता में पंत ने इस तथ्य का खुलासा करते हुए कहा है कि पहले मैं अपनी 'अहंता' (मैं) को उपेक्षा से देखता था। बाद में मैं समझ गया कि तुमने (सत्य ने) मुझे भेदी 'अहंता' का ही छोर पकड़ा दिया है, इसी के माध्यम से मैं तुम्हें प्राप्त कर सकता हूँ। तुम मेरी 'अहंता' का ही विस्तार हो। इसी के द्वारा मैं अपने-पराए, तुम्हें और विश्व एवं विश्व पार के सत्य को जान पाता हूँ। मैंने अपने इस 'अहं' को उलट-पलट कर भी देखा है और वहाँ भी तुम्हें (सत्य) ही पाया है।

अपनी 'रूपांध' कविता में पंत ने सत्य को रूप से परे माना है। सत्य को रूप पर आश्रित मानना 'सत्य-कथा' को सत्य से और 'प्रेमकथा' को प्रेम से अधिक महत्व देना है। रूप का सत्य अरूप की गहराइयों में होता है। 'वाष्प घन' कविता में कवि 'अहं' रूपी वाष्पघन से विमूढ़ होकर, 'मानस' से कहता है कि तुम्हारे भीतर के सत्य को मैं नहीं जान सकता। तुम्हारे उपकरणों में ही मेरा मन उलझ जाता है। रूप, रस, आकारहीन सत्य को मैं जीवन में कैसे प्रतिष्ठित करूँ कि 'मानवता की फसल हँस सके'। अतः

अच्छा हो,
तुम स्वयं रिमझिम कर
मिट्टी में मिल जाओ,
धरती को सहलाओ,
नयी हरियाली बन जाओ।'

वस्तुतः प्रेम और सत्य को अखंड, अविभाज्य, अनंत और शाश्वत सत्ता के रूप में स्वीकार करना उन्हें वायवी बना देता है। प्रेम की भाँति ही सत्य का स्वरूप भी सामाजिक व्यवहार द्वारा निधार्रित होता है। सामाजिक यथार्थ चूँकि निरंतर परिवर्तनशील है, अतः सत्य की शाश्वत या अखंड सत्ता को स्वीकार करना अंतश्चेतनावादियों का एक भ्रम है। युगीन मूल्यभावना से जुड़कर ही 'सत्य' को यथार्थ स्वरूप प्राप्त होता है। एक विषमताग्रस्त वर्ग विभाजित समाज में चेतना, मूल्य भावना और सत्य की अखंडता और शाश्वता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके अंतर्गत चेतना, मूल्यदृष्टि और सत्य के परस्पर विरोधी स्वरूप और स्वर स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। इस प्रकार पंतजी शत्रुतापूर्ण स्थितियों, अंतर्दशाओं का समन्वय कर अपनी पुनरुत्थानवादी दृष्टि का ही परिचय देते हैं।

अंतश्चैतन्य के प्रकाश में एक उत्सवधर्मी विराट समन्वय के आयोजन का प्रयास पंत जी ने अपने 'लोकायतन' शीर्षक महाकाव्य में किया है। इसमें इन्होंने भारत ग्राम के रूप में सुंदरपुर की कल्पना कर वंशी, हरि जैसे ग्रामोद्धारक पात्रों के आयोजन से विकास पथ को प्रशस्त करने का प्रयास किया है। इस महाकाव्य के प्रथम खंड 'बाह्य परिवेश' के अंतर्गत कवि ने प्राचीन भारतीय संस्कृति की गौरवगाथा को पृष्ठभूमि बनाकर स्वाधीनता आंदोलन की उपलब्धियों को रेखांकित किया है। इसी क्रम में भारत-पाक विभाजन की त्रासदी तथा महात्मागांधी के साम्प्रदायिक सद्भाव-स्थापना के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। संस्कृति द्वार के अंतर्गत 'आत्मदान' शीर्षक में कवि ने बापू के बलिदान को गौरवान्वित करते हुए गांधीवादी सिद्धांतों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला है। इस महाकाव्य के प्रथम खंड की एक महत्वपूर्ण विशेषता है राम राज्य की कृषि-सभ्यता के रूप में परिकल्पना, जिसमें रामकथा की पुनर्व्याख्या करते हुए कवि ने सीता, राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि अनेक पात्रों के साथ ही रावण, इंद्र आदि से सम्बद्ध पौराणिक मान्यताओं को नयी प्रतीकात्मकता प्रदान की है। इसे कविवर पंत की एक बड़ी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। लेकिन प्रतीकों के प्रगतिशील स्वरूप का अंकन करने के बावजूद जब वे इनमें से अपना आदर्श चुनते हैं , तो प्रायः अंतर्विरोध के शिकार बन जाते हैं। एक तरफ वे वर्ग-वर्ण भेद पर आधारित ऊँच-नीच की भावना की समाप्ति की आवश्यकता रेखांकित करते हैं, तो दूसरी ओर मनुस्मृति को लेकर उनकी अंतर्दृष्टि आपत्तिजनक बन जाती है :

द्विजों के हित बन ज्ञान प्रकाश
शूद्रहित रच पद सेवाचार,
क्षात्र हित शौर्य, वैश्याहित वित्त,
हुई भगवत करूणा साकार!
न हिंदू संस्कृति का उपमान
कहीं जगती में मिलता अन्य
मनुस्मृति में कह अंतिम शब्द
कर गए मनु धरती को धन्य।'

वर्णाश्रम व्यवस्था की नीव को दृष्ट करने वाले मनुस्मृति जैसे अनेक आर्य ग्रंथों (ऋषि ग्रंथों) को आदर्श मानते हुए जब पंत भारत की आध्यात्मिकता और पश्चिम की वैज्ञानिक भौतिक उन्नति का समन्वय करने लगते हैं, तो चिंतनशील पाठक के लिए पर्याप्त दिक्कतें पेश आती हैं। यही नहीं जब वे पश्चिमी वैज्ञानिक देन का उद्‌घाटन करते हुए आल्पस, जिनेवा, फ्रांस, इटली, यूनान, रोम, नार्वे, स्वीडन, स्टॉकहोम, इंग्लैंड, रूस और रूस के मास्कों, लेनिन ग्राद, क्रेमलिन, वोल्गा के साथ ही अमेरिका, जापान का चरित्र विश्लेषण करते हुए उन्हें एक सूत्र में बाँधने की बात करते हैं तो उनकी अंतर्विरोधी दृष्टि और अधिक उजागर हो जाती है। इस संदर्भ में वे रूस की प्रकृति का चित्रण करते हुए लिखते हैं:

दलित भू-जन को जिसने भव्य, स्वप्न जीवन का दिया महान।'

इसके साथ ही वहाँ की सामूहिक कृषि, सामूहिक उत्पादन और तर्कसंगत वितरण प्रणाली की स्तुति करते हुए वे अमेरिका की महान् उपलब्धियों की भी भावविभोर होकर चर्चा करते हैं :

साहसी अमरीकी निर्भीक, सुज्ञ, युग स्थिति प्रबुद्ध स्वच्छंद।
वायु जल स्थल बल कम्पित विश्व, गरजते सिंधु व्यौम निर्द्वंद्व।

दोनों के अंतर को रेखांकित करते हुए पंत ने लिखा है :

व्यक्ति में यहाँ (अमेरिका) प्रेरणा, स्रोत,
रूस में सामूहिक उन्मेष।'

'लोकायतन' के रचना काल तक और उसके काफी बाद तक भी रूस और अमेरिका दो राष्ट्र मात्र न रहकर विश्व व्यापी दो प्रवृत्तियाँ, दो भावधारा, दो विचारधारा रहे हैं। आज भी समाजवाद और पूंजीवाद के रूप में वह स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। इनका सामंजस्य जिस अखंड चेतना के आधार पर पंत करना चाहते हैं, वह संभव नहीं है। क्योंकि समाजवादी और पूँजीवादी उत्पादन पद्धतियाँ केवल परस्पर भिन्न उत्पादन पद्धतियाँ न होकर दो भिन्न जीवन पद्धतियाँ भी हैं। ये दोनों एकाकार होकर भू-स्वर्ग की पीठिका नहीं बन सकतीं, जैसा कि पंत जी की मान्यता है :

'पूँजीवादी जनवादी श्रम भू स्वर्ग पीठ में संयोजित,
सित आध्यात्मिकता की प्रेमी नव भू-मानवता हुई उदित!
आमूल बदल अध्यात्मवाद जन भू पर जयी हुआ निश्चित,
भौतिकता संस्कृति पाद-पीठ, - अब वर्ग-सभ्यता जीवन-मृत।'

इसे मानवता के प्रति एक शुभकामना मात्र माना जा सकता है। इस पूरे महाकाव्य का संचालक वंशी वाल्मीकि का अवतार मात्र न होकर कविवर पंत की अंतश्चेतना का प्रतिनिधि भी है। इसी के महद् प्रयास से :

प्रथम बार अब जगत ब्रह्म में, ब्रह्म जगत में हुआ प्रतिष्ठित
मुक्त भेद-मन भू-जीवन सित चित् पट में हुआ समन्वित!

सब मिलाकर 'लोकायतन' कविवर पंत के लोक-कल्याण संबंधी नेक इरादे का भव्य एवं कलात्मक साक्षात्कार करता है। अपनी अन्यान्य रचनाओं के माध्यम से पंत ने अतीतोन्मुखता की अपेक्षा भविष्योन्मुखता का ही अधिक परिचय दिया है। वर्तमान के प्रति उनका प्रायः असंतोष ही व्यक्त हुआ है।

11.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में कविवर पंत की काव्य-यात्रा के विभिन्न सोपानों के परिचय से पूर्व प्रस्तावना में इनके व्यक्तित्व और कृतित्व की संक्षिप्त झलक प्रस्तुत कर छायावादी-स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की कतिपय मूल विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। इसे आप पंत के काव्य की संक्षिप्त पृष्ठभूमि मान सकते हैं। अपने छायावादी चरण में पंत ने छायावाद की अंतर्बाह्य विशेषताओं का अत्यंत कुशलता के साथ अपने काव्य में समावेश किया है। छायावाद की वैयक्तिक स्वाधीनता की चेतना की अभिव्यक्ति का प्रयास प्रकृति और कल्पना के माध्यम से पंत ने सफलतापूर्वक किया है। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ ही इनकी नारी और प्रणय विषयक धारणा भी छायावादी काव्यधारा की पूर्ण संगति में है। इसे अनेक

उदाहरणों से इस इकाई में पुष्ट करने का प्रयास किया गया है। इनकी प्रणय-वेदना कहीं प्रसाद के 'आँसू' की याद दिलाती है तो कहीं महादेवी के शाश्वत विरह के साथ एकाकार हो जाती है।

इस इकाई में आप पंत की विकास यात्रा के दूसरे चरण प्रगतिवादी जीवन बोध से भी पूरी तरह परिचित हो सकेंगे। प्रगतिशील आंदोलन और युगीन वास्तविकता ने कुछ समय के लिए पंत को छायावाद के स्वप्नजाल से मुक्त कर धरती का कवि बना दिया। इसका संकेत पंत ने अपने 'युगांत' शीर्षक काव्य-ग्रंथ द्वारा दिया। 'युगवाणी' में कवि ने मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन से प्रभावित होकर साम्यवाद को मानव द्वारा मानव के शोषण से मुक्त स्वर्ण युग के रूप में रेखांकित किया है। इसे इकाई में विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। भारतीय विषमता ग्रस्त समाज में उसके विभिन्न वर्गों का चरित्र विश्लेषण करते हुए कवि ने अपनी पूर्ण प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। पूँजीपति के रूप में धनिक वर्ग, मध्य वर्ग, मज़दूर वर्ग के चरित्र को विभिन्न उदाहरणों के द्वारा इस इकाई में अच्छी तरह स्पष्ट किया गया है। इससे पंत की वर्ग विषयक दृष्टि से आप अच्छी तरह परिचित हो सकेंगे। 'युगवाणी' में यद्यपि कवि ने श्रमिक वर्ग की क्रांतिकारिता के प्रति विश्वास व्यक्त करते हुए कृषक वर्ग को रूढ़िप्रिय, अंधविश्वासी, बैल-बंधु, मूर्ख, जड़ीभूत, अपनी थोड़ी-सी ज़मीन के प्रति मोहग्रस्त, दुर्भाग्य का पुतला मानकर परिवर्तन क्षमता से शून्य दिखाया है, फिर भी अपनी सर्वाधिक सहानुभूति का पात्र उन्हें ही माना है। उनके प्रति अपनी अनंत सहानुभूतिशील कल्पना ने इन्हें 'ग्राम्या' की रचना के लिए प्रेरित किया है।

अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रगतिशील रचना 'ग्राम्या' में पंत ने 'विश्व को ग्रामीण नयन' से देखने का उद्घोष कर प्रगतिवादी आंदोलन का प्रतिनिधित्व किया है। इस तथ्य को विस्तार से इस इकाई में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रगतिवाद एक ऐसा साहित्य आंदोलन माना जा सकता है, जिसमें पहली बार कवियों ने मलिन ग्रामीण जनता के पैरों की धूलि अपने मस्तक पर लगाकर अपने आपको पवित्र किया है। इस कार्य में पंत किसी से पीछे नहीं रहे हैं। अपनी 'ग्राम्या' की रचना द्वारा कवि ने 'ग्राम देवता' के सम्मुख नतसिर होकर प्रणाम किया है :

> राम राम, हे ग्राम देवता, यथानाम।
> शिक्षण्य हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम!

ग्रामीण जन जीवन, ग्राम नारी, गाँवों की हरी भरी धरती, ग्राम प्रकृति के साथ ही ग्राम संस्कृति का जो भव्य चित्र पंत ने 'ग्राम्या' में उपस्थित किया है, वह सम्पूर्ण प्रगतिशील काव्य की अविस्मरणीय सम्पदा है। प्रस्तुत इकाई में आप इस तथ्य से भली भाँति परिचित हो सकेंगे।

एक ओर छायावादी व्यक्तिनिष्ठ स्वप्न लोक और दूसरी ओर प्रगतिवादी समष्टि भावना पर आधारित यथार्थ लोक की विषमता से प्रेरित पंत अपनी काव्य-यात्रा के तीसरे चरण में दोनों के मध्य समन्वय का प्रयास लेकर उपस्थित होते हैं। अपने 'स्वर्ण-काव्य', 'कला और बूढ़ा चांद' तथा 'लोकायतन' शीर्षक महाकाव्य में वे इसी समन्वय की दिशा में सक्रिय हुए हैं। यह सही है कि अरविंद दर्शन की सीमाओं और अपनी अंतश्चेतना संबंधी मान्यता के कारण पंत को अपने समन्वयवादी प्रयास में समुचित सफलता नहीं मिली है, फिर भी इनका यह काव्यात्मक प्रयास हिंदी साहित्य-जगत में स्मरणीय रहेगा। सत्य, प्रेम, चेतना, अंतर्मन की जिस अखंडता और शाश्वतता की परिकल्पना को लेकर पंत ने भौतिकता और आध्यात्मिकता के सामंजस्य का प्रयास अपनी विकास-यात्रा के तीसरे चरण में किया है, वह व्यावहारिक स्तर पर अधिक तर्क-संगत नहीं दिखायी देती। इस तथ्य के साथ ही प्रस्तुत इकाई में पंत की समन्वय विषयक मान्यताओं की भी विस्तार से चर्चा की गयी है। इस प्रक्रिया में कवि की पद्धति ही नहीं, वरन् उसके एतदविषय निष्कर्षों का भी आलोचनात्मक निरीक्षण परीक्षण किया गया है। इसके अध्ययन के बाद आप स्वयं पंत के काव्य का वस्तुगत आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।

यहाँ इस बात की ओर संकेत मात्र कर देना अपेक्षित है कि सामाजिक ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से आदर्शवाद और भौतिकवाद - दोनों परस्पर भिन्न और विरोधी दृष्टिकोण हैं। आदर्शवाद के अनुसार पहले आदर्श (आइडिया) फिर भौतिक जगत की स्थिति है। जबकि भौतिकवाद के अनुसार पहले भूत (पदार्थ) फिर विचार या चेतना का अस्तित्व होता है। इसके लिए सामान्य उदाहरण लिया जा सकता है जैसे, आदर्शवादी मानते हैं कि पहले हमारे मस्तिष्क में एक मकान का विचार या कल्पना अस्तित्व ग्रहण करती है, फिर उसे हम भौतिक आकार देते हैं। जबकि भौतिकवादियों के अनुसार जब तक बाह्य जगत में पेड़, पत्थर, मिट्टी आदि मकान के उपकरणों का अस्तित्व नहीं होगा तब तक मकान की कल्पना या विचार हमारे मस्तिष्क में आ ही नहीं सकता। इनके अनुसार मनुष्य, विचार या चेतना के अस्तित्व में

आने से पहले ही भौतिक जगत का अस्तित्व था। मनुष्य जीवन और उसकी चेतना का विकास इस भौतिक जगत के विकास पर आधारित है। पदार्थ (मैटर) का मनुष्य और उसकी चेतना से स्वतंत्र अस्तित्व पहले से था, अतः भौतिक जगत के आधार पर ही चेतना का विकास हुआ है। लेकिन आध्यात्मवादी आदर्शवादी चिंतकों का एक समुदाय चेतना को ईश्वर प्रदत्त, दैवी शक्ति मानकर, उसे प्राथमिक स्थान देता है। यदि आप विकास की इस दृष्टि को स्वीकार करते हैं, तो चेतना या परम चैतन्य के आधार पर पंत की समन्वय भावना आपके लिए स्वीकार्य हो सकती है। इस दृष्टि से बहुत सारे आलोचकों ने पंत के काव्य की प्रशंसा भी की है। लेकिन इसके विपरीत यदि आप ऐतिहासिक विकास की भौतिकवादी दृष्टि को स्वीकार करते हैं, तो पंत की आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय में कुछ असंगतियाँ दिखायी दे सकती हैं। इस तथ्य का उल्लेख इकाई में विस्तार-भय के कारण नहीं किया गया है। इसे ध्यान में रखें तो आप अपनी दृष्टि से पंत के काव्य-विकास के तीसरे चरण का अपने ढंग से आलोचनातमक मूल्यांकन आसानी से कर सकते हैं।

11.4 प्रश्न

1. छायावादी काव्यधारा में पंत के योगदान को स्पष्ट करें।
2. प्रकृति चित्रण के संदर्भ में पंत की कल्पना की ऊँची उड़ान की भूमिका पर विचार करें।
3. प्रगतिवादी काव्यांदोलन के विकास में पंत के योगदान को स्पष्ट करें।
4. पंत-काव्य में आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय की चेष्टा का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
5. पंत काव्य में व्यक्त सत्य, चेतना और प्रणय संबंधी अवधारणाओं की समीक्षा करें।

इकाई 12 सुमित्रानंदन पंत का काव्य-शिल्प : भाषा और शैली

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 पंत की काव्य-भाषा
12.2.1 हिंदी की परम्परागत काव्य भाषा और पंत
12.2.2 शब्दावली
12.2.3 शब्द-चयन
12.2.4 शब्द-योजना
12.2.5 नवीन शब्द-निर्माण
12.2.6 शब्द-संगीत : लय एवं गति की योजना
12.2.7 व्याकरण और पंत की काव्य-भाषा
12.3 पंत की काव्य-शैली
12.3.1 अप्रस्तुत विधान : सम्मूर्तन विधान (अमूर्त एवं मूर्त के संदर्भ में)
12.3.2 कतिपय पाश्चात्य अलंकारों की योजना
12.3.3 गति, नाद एवं लय की व्यंजना
12.3.4 बिम्ब विधान (ऐन्द्रिक बिम्बों के संदर्भ में)
12.3.5 प्रतीक-विधान
12.4 काव्य रूप एवं छंद-विधान
12.4.1 प्रगीत काव्य
12.4.2 प्रबंधात्मक कथा एवं काव्य-रूपक
12.4.3 छंद विधान
12.5 सारांश
12.6 प्रश्न

12.0 उद्देश्य

यह इकाई पंत के काव्य शिल्प एवं भाषा-शैली पर आधारित है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- भारतेंदु एवं द्विवेदी युगीन काव्य-भाषा से पंत की काव्य-भाषा के अंतर को समझ सकेंगे,
- पंत की काव्य-भाषा की शब्दावली, शब्द-चयन और शब्द-योजना की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे,
- पंत की शब्द-निर्माण-क्षमता, शब्द-संयोजन से उत्पन्न गति, लय आदि से युक्त संगीतात्मकता से परिचित हो सकेंगे,
- बंधे-बंधाए व्याकरण की अवहेलना द्वारा काव्य-भाषा में आए गुणों के महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- काव्य-शैली की दृष्टि से पंत की अप्रस्तुत योजना द्वारा सम्पन्न सम्मूर्तन विधान के कौशल को समझ सकेंगे,
- पंत के अद्‌भुत बिम्ब-विधान एवं प्रतीक-विधान की कलात्मक विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे, और
- पंत द्वारा प्रयुक्त काव्य-रूप और उनके छंद विधान की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत मुख्यतः एक शब्द शिल्पी के रूप में छायावादी कवियों में विख्यात हैं। इनके काव्य में विषय-वस्तु की अपेक्षा कला को अधिक महत्व मिला है। इनका सर्वाधिक विद्रोह भी कला के क्षेत्र में ही प्रकट हुआ है। इसका मुख्य कारण तत्कालीन साहित्यिक परिवेश माना जा सकता है - जिसमें कविता की भाषा के लिए खड़ी बोली हिंदी और ब्रजभाषा का विवाद एक नया रूप धारण कर चुका था। इसे

अच्छी तरह समझने के लिए आपको छायावाद के पूर्व भारतेंदु एवं द्विवेदी युगीन कविता में खड़ी बोली हिंदी की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखना होगा। इसकी विस्तृत चर्चा तो हम यथा-स्थान आगे करेंगे, लेकिन यहाँ पंत के एतद्विषयक प्रयास के महत्व को रेखांकित करना आवश्यक है।

बीसवीं शती के दूसरे दशक के अंत तक ब्रज़भाषा समर्थकों के मंच से हिंदी खड़ी बोली को कविता के लिए असमर्थ होने की घोषणा की जा रही थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक से लेकर अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त जैसे खड़ी बोली के समर्थ कवियों के बावजूद यह स्थिति बनी हुई थी। अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-भाषा को नीरस, माधुर्यगुण से रहित और गद्यात्मक बताया जा रहा था। मतवाला में छपी निराला की 'बादल राग' कविता में 'केंचुआ छंद' कहकर उसके छायावादी भाव वैभव पर इस प्रकार आरोप लगाया जा रहा था :

कल्पना हरामजादी फटके न पास मेरे,
पिंगल (छंद) को पटकि पाताल को पठाऊँ मैं,
.....
बंगला केला के जूठे टुकड़े कमाऊँ नाम,
कवि कालिकाल का 'निराला' कहलाऊँ मैं।'

पंत इन परिस्थितियों से पर्याप्त खिन्न थे। 'वीणा', 'उच्छ्वास' और 'ग्रंथि' जैसी कोमल कांत पदावली और माधुर्य गुण से परिपूर्ण रचनाएँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर 'पल्लव' (1925) की भूमिका में विस्तार के साथ इन्होंने खड़ी बोली हिदीं की काव्य-सामर्थ्य का प्रतिपादन ।केया। 'बादल', 'निर्झर', 'एकतारा', 'नौका-विहार', 'सांध्य वंदना' जैसी श्रेष्ठ कविताएँ प्रस्तुत कर इन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि कल्पना की नयी उड़ान, नये अप्रस्तुत विधान, बिम्ब एवं प्रतीक विधान आदि शिल्प के उपकरणों की दृष्टि से भी खड़ी बोली हिंदी ही आज की भावधारा को वहन कर सकती है। ब्रजभाषा पर रीतिकालीन श्रृंगारिकता, बँधे बधाएँ छंदों और अलंकार प्रियता का जो बोझ है, वह आधुनिक चेतना को व्यक्त करने में पूरी तरह असमर्थ है।

उपर्युक्त संक्रमण कालीन स्थिति को ध्यान में रखकर अत्यंत सचेत रूप से पंत ने अपनी काव्य-भाषा और काव्य-शिल्प का निर्धारण किया। इनके आरंभिक चरण, छायावादी चरण के काव्य को देखते हुए काव्य-भाषा के रूप में हिंदी खड़ी बोली पर असमर्थता या अकलात्मकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आप पंत के भाषा एवं शिल्प कौशल को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

काव्य भाषा की दृष्टि से छायावादी कवियों, विशेषतः पंत को ब्रजभाषा से ही दो-चार नहीं होना पड़ा। व्याकरण के नियमों 'गद्य के पद विन्यास से जकड़ी हुई द्विवेदी युगीन काव्य-भाषा भी छायावादी भावभिव्यक्ति की स्वच्छंदता में बाधक बनी हुई थी। व्याकरण की इस जकड़न और लोक प्रचलित शब्दावली की सपाट विवरणात्मकता से भी उसे मुक्त करना आवश्यक था। द्विवेदी युगीन बंधी-बंधाई विषय वस्तु से भिन्न नवीन भावधारा की अभिव्यक्ति के लिए नये शब्दों, नवीन अप्रस्तुत विधान, बिम्ब एवं प्रतीक विधान की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए पंत ने एक नयी काव्य-भाषा और काव्य-शैली की प्रतिष्ठा पर बल दिया। इन तथ्यों को हम पंत के काव्य-शिल्प का विवेचन-विश्लेषण कर आसानी से समझ सकते हैं।

12.2 पंत की काव्य-भाषा

12.2.1 हिंदी की परम्परागत काव्य-भाषा और पंत

पंत के आरंभिक रचना-काल में परम्परागत काव्य-भाषा के रूप में ब्रज भाषा का ही अधिक जोर था। राजा लक्ष्मण सिंह और राज शिव प्रसाद सितारे हिंद के माध्यम से क्रमशः संस्कृत निष्ठ हिंदी और अरबी-फारसी युक्त उर्दू को लेकर जो विवाद खड़ा हुआ था, उसे भारतेंदु ने समाप्त कर हिंदी के बोल-चाल (आमफहम) के प्रचलित रूप को हिंदी खड़ी बोली गद्य के विकास का आधार बनाया। उनके मण्डल के सभी लेखकों के सम्मिलित प्रयास द्वारा हिंदी गद्य के इस रूप को पुष्ट और विकसित किया। लेकिन उस समय तक ब्रजभाषा ही काव्य-भाषा के रूप में स्वीकृत रही। स्वयं भारतेंदु ने भी यह स्वीकार किया कि हिंदी गद्य हमारे विचारों की वाहिका अवश्य है लेकिन हृदय के भावों की वाहिका ब्रजभाषा ही हो सकती है। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने यह गहराई से महसूस किया था कि

गद्य और पद्य की अलग-अलग दो भाषाएँ युक्ति संगत नहीं हैं। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'सरस्वती' पत्रिका और अपने सहयोगियों के माध्यम से भारतेंदु द्वारा समर्थित गद्य को सुसंस्कृत-परिष्कृत और व्याकरण सम्मत बनाया। इसके साथ ही उसे गद्य और पद्य दोनों के लिए संगत सिद्ध किया। उनकी प्रभाव छाया में श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने खड़ी बोली की महत्वपूर्ण काव्य-रचनाएँ प्रस्तुत कीं। लेकिन द्विवेदी जी की यह मान्यता कि 'गद्य और पद्य का पद विन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए' - का कड़ाई से पालन करने के कारण उस युग के प्रमुख कवियों की भाषा गद्यवत विवरणात्मक और इतिवृत्तात्मक हो गयी। इसलिए छायावादी कवियों को जहाँ एक ओर रीतिकालीन अलंकार और छंद प्रियता तथा भाषा की कोशबद्धता के विरूद्ध संघर्ष करना पड़ा, वहीं दूसरी ओर द्विवेदी युगीन गद्यात्मक पद-विन्यास, व्याकरण सम्मत रूप और वर्णनात्मकता के विरूद्ध भी संघर्ष करना पड़ा। गद्य से पद्य भाषा के पद-विन्यास और शब्दावली को अलग करने में पंत का प्रयास सराहनीय है। गद्य से भिन्न एक विशिष्ट काव्य-भाषा के निर्माण में पंत की भूमिका उल्लेखनीय है। इस तथ्य को आप पंत की भाषा संबंधी विशेषताओं के माध्यम से आसानी से लक्ष्य कर सकेंगे।

12.2.2 शब्दावली

अपनी काव्य-भाषा के निर्माण में पंत ने संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का सर्वाधिक सहारा लिया है। द्विवेदी युगीन मान्यता, जो आज भी हिंदी के लिए स्वीकार्य है कि हिंदी में संस्कृत से लाए गए तत्सम शब्दों के साथ संस्कृत के नियामनुकूल संधियों का ही प्रयोग होना चाहिए; पंत जी ने इसे स्वीकार नहीं किया। जैसे मरूत+आकाश के लिए मरूदाकाश शब्द न बनाकर इन्होंने मरूताकाश शब्द को स्वीकार किया है। इनकी यह प्रकृति 'वाणी' से लेकर अंत तक यथावत बनी रही है। संस्कृत के अक्षय भंडार से कर्णमधुर, कोमलकांत शब्दों को ग्रहण कर इन्होंने हिंदी खड़ी बोली को भाव-प्रवण काव्यात्मक भाषा का रूप दिया है। 'ग्राम्या' जैसी ग्रामीण बोध को चित्रित करने वाली रचना में भी कवि ने अपनी संस्कृत निष्ठा का ही अधिक परिचय दिया है। 'ग्राम देवता' कविता में गाँव के पुरुष का चित्र कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

तुम कोटि बाहु, वर हलधर, वृष वाहन बलिष्ट,
मित असन, निर्वसन, क्षीणोदर, चिर सौम्य शिष्ट,
शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट, गणपति वरिष्ठ,
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित् कर्मनिष्ट।

यह सही है कि इस तरह की भाषा से ग्राम जीवन के यथार्थ बोध की क्षति हुई है, बावजूद इसके यहाँ भाषागत अकलात्मकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

वैसे तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग में भी पंत ने अपनी उदारता का परिचय दिया है। 'चमारों के नृत्य' का एक उदाहरण है :

'मजलिस का मसखरा करिंगा
बना हुआ है रंग बिरंगा
भरे चिर्कुटों से वह सारी
देह, हंसाता खूब लफंगा....
लिए हाथ में ढाल, टेडुही
दुमुँहा सी बलखायी सुंदर।'

इस काव्यांश में करिंगा, चिरकुट, टेडुही, लफंगा आदि देशज शब्दों के साथ ही अधिकांशतः तद्भव शब्दावली का ही सहारा लिया गया है। इसी तरह 'नहान' शीर्षक कविता में तद्भव और देशज शब्दों का ठाठ सहज रूप से उजागर हुआ है। पंत की तत्सम बहुल काव्य-भाषा का वास्तविक सौंदर्य उनकी 'पल्लव' की कविताओं में प्रस्तुत हुआ है, जिसे आप 'एक तारा' और 'नौका विहार' शीर्षक कविताओं में देख सकते हैं। 'स्वर्ण किरण', स्वर्ण धूलि', 'अतिमा' आदि 'स्वर्ण काव्य' में संकलित रचनाओं में पंत ने लगभगग 90 प्रतिशत संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग कर हिंदी के शब्द भंडार को अवश्य बढ़ाया है, लेकिन बहुत से स्थलों पर उनकी भाषा अत्यंत बोझिल हो गयी है। 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'लोकायतन' में कवि ने तत्सम और तद्भव शब्दों के सामंजस्य का प्रयास किया है। इस प्रकार एक विशेष परिस्थिति में पंत ने तत्सम शब्दावली के माध्यम से हिंदी खड़ी बोली की काव्य-भाषा को सम्पुन्नत करने का प्रयास किया है। आगे चलकर यह उनके लिए रूढ़ि बन गयी है।

12.2.3 शब्द-चयन

पंत की काव्य-भाषा का वास्तविक महत्व शब्द भंडार या शब्दावली की दृष्टि से अधिक न होकर इनके शब्द-चयन पर आधारित है। इस दृष्टि से वे अत्यंत सजग और सावधान दिखायी देते हैं। वैसे तो सभी छायावादी कवियों ने पर्यायवाची शब्दों की अर्थ छाया को ग्रहण करने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। लेकिन पर्यायों के पारस्परिक अर्थगत सूक्ष्म अंतर पर सर्वप्रथम पंत ने ही चिंतन किया है। इन्होंने पल्लव की भूमिका में लिखा है, 'भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः संगीत भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौहों' से स्वाभाविक प्रसन्नता और आह्लाद का हृदय में अनुभव होता है। (पृष्ठ 29-30) इससे स्पष्ट है कि पंत ने चाहे तद्भव-क्षेत्र से शब्दों का चयन किया हो या फिर तत्सम - उनके अनुकूल अर्थ पर ही इनकी दृष्टि रही है। इसके लिए एक उदाहरण 'एक तारा' या 'संध्या तारा' कविता से लिया जा सकता है :

मृदु मृदु स्वप्नों से भर अंचल, नव नील नील, कोमल कोमल,
छाया तरू वन में तम श्यामल।

यहाँ अंत में कवि ने 'श्यामल' शब्द का प्रयोग तुक के लिए 'नील', 'कोमल' शब्दों के बाहरी दबाव के कारण न कर एक विशिष्ट और सूक्ष्म अर्थ की व्यंजना के लिए किया है। 'मृदु-मृदु' और 'कोमल-कोमल' के अर्थ बोध के आग्रह की पूर्ति के लिए 'श्यामल' शब्द सर्वाधिक अनुकूल है। इससे स्पर्श बोध को एक स्पष्ट आकार मिलता है। अतः यहाँ 'श्यामल' शब्द कवि की रंग-चेतना के साथ उसके स्पर्श बोध को भी रेखांकित करता है। संध्या के साथ ही उषा, झीना, चाँदनी, सागर आदि के चित्रण में भी पंत ने अपने शब्द चयन के अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। अकेली 'एकतारा' कविता का शब्द चयन की दृष्टि से विश्लेषण कर आप स्वयं पंत के एतद् विषयक कौशल को समझ सकते हैं।

12.2.4 शब्द योजना

अर्थगत विशेषता को उत्पन्न करने के लिए शब्दों का संयोजन अर्थात् एक शब्द के साथ दूसरे शब्द की योजना भी पंत विशेष कौशल के साथ करते हैं। इसके लिए 'शिल्पी' से एक उदाहरण लिया जा सकता है:

'शशि असि ही प्रेयसी स्मृति,
जगी हृदय हलादिनी।'

यहाँ 'शशि' के साथ 'असि' (तलवार) और 'हृदय' के साथ 'हलादिनी' की योजना प्रेयसी की स्मृति के प्रभाव को अत्यंत सूक्ष्मता से व्यंजित करती है। इसी तरह परिवर्तन शीर्षक कविता में पंत की शब्द योजना के कौशल को अच्छी तरह समझा जा सकता है:

'शत् शत् फेनोच्छ्वसित, स्फीत, फूत्कार भयंकर'

यहाँ पंत ने विशिष्ट शब्द संयोजन के द्वारा परिवर्तन के भयंकर रूप को मूर्तिमान किया है। इसके साथ ही इन्हांने परिवर्तन के परस्पर विरोधी स्वरूप को व्यक्त करने के लिए विरोध-सूचक शब्दों का भी एक साथ संयोजन कर अपनी भाव प्रवणता का परिचय दिया है:

'अहे अनिर्वचनीय! रूपधर भव्य-भयंकर,
इन्द्रजाल-सा तुम अनंत में रचते सुंदर,
गरज गरज, हँस हँस, चढ़ गिर, छा-ढा, भूअंबर,
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर।'

यहाँ कवि ने परस्पर विरोधी अर्थसूचक शब्दों की योजना द्वारा परिवर्तन के व्यापक स्वरूप को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। वस्तुतः इस तरह की शब्द योजना ही काव्य भाषा का वास्तविक पद-विन्यास है, जो उसे गद्य की भाषा से अलग करती है।

12.2.5 नवीन शब्द निर्माण

पंत ने अपनी काव्य भाषा को सम्पन्न बनाने के लिए कई पद्धतियों का सहारा लिया है। कहीं-कहीं इन्होंने प्रचलित शब्दों के स्वरूप और वर्तनी में परिर्वन कर नये शब्दों का निर्माण किया है, जैसे- निर्माऊँ, प्रकटाऊँ, कटिनी, विहगिनी, प्रभापूर्य, निर्जीवित, आदि। कहीं-कहीं तद्भव और तत्सम शब्दों में

अपनी रूचि के अनुकूल प्रत्यय लगाकर भी पंत ने नये शब्दों का निर्माण किया है, जैसे-रंगिणि, विहंगिनि, दीपित, ज्योतित, रोमिल, धवलिम, पीतिमा, तनिमा, प्रसादिनी, स्वराकार, उदासिनी, हासिनी, विकासिनी आदि। अपनी 'ग्राम्या' के साथ ही 'स्वर्ण काव्य' में भी पंत ने इस प्रकार के नवीन शब्दों के निर्माण-कौशल का विशेष परिचय दिया है।

अपनी काव्य-भाषा को और अधिक सम्पन्न बनाने के लिए पंत ने तत्सम शब्दों को स्वर संधि के आधार पर नया रूप प्रदान किया है। जैसे-पीताभा, पीतोज्वल, पीतिमा, स्वर्णाभ, हरिताभ, अरूणोज्वल, स्वर्णोज्वल, विरहोज्वल आदि इसी प्रकार 'निर्भर' (आधारित) शब्द का प्रयोग अपने काव्य में पंत ने अधिकांशतः समस्त के अर्थ में किया है।

शब्दों के रूप परिवर्तन द्वारा नवीन शब्द-निर्माण के साथ ही पंत ने अंग्रेज़ी भाषा के बहुत से शब्दों का विशिष्ट अनुवाद कर अपनी काव्य-भाषा को सम्पन्न किया है। जैसे-डिवाइन लाइफ का भागवत जीवन अनुवाद करने के साथ ही इन्होंने 'भागवत काव्य, भागवत भाव, भागवत दृष्टि, भागवत ध्येय' आदि अनेक शब्दों की रचना की है, इसी प्रकार स्वप्निल स्मित (ड्रीमी स्माईल) अजान (इन्नोसेण्ट), स्वर्णिम युग (गोल्डेन एज), स्वर्गीय ज्योति (हैवनली लाइट) आदि शब्दों के विशिष्ट अनुवाद पंत की भाषा को समृद्ध करते हैं।

12.2.6 शब्द-संगीत : लय एवं गति की योजना

इस संबंध में पंत जी की अपनी मान्यता है कि 'कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, जो अपने भव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों।' (पल्लव की भूमिका, पृ0 30) इस मान्यता से प्रेरित होकर पंत ने 'ठड्. ठड्. ठन' छनाछन, झम-झम, ठनाठन, टर्-टर्, मर्मर्, झर् झर् आदि शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है, इसे हम इनकी काव्य शैली के अंतर्गत कुछ विस्तार से विवेचित-विश्लेषित करेंगे।

12.2.7 व्याकरण और पंत की काव्य भाषा

गद्य भाषा के व्याकरण का शतप्रतिशत पालन पद्य-भाषा में संभव नहीं है, क्योंकि दोनों के पद विन्यास और वाक्य विन्यास में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। आप 'शब्द निर्माण' के संदर्भ में देख चुके हैं कि पंत ने प्रत्यय प्रयोग एवं संधि सम्बन्धी व्याकरण के कुछ नियमों की उपेक्षा करते हुए स्वरूप और अर्थ की दृष्टि से कतिपय नये शब्दों का निर्माण किया है। अपनी भावात्मक या कथ्यगत अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए इन्होंने अनेक पुल्लिंग वाची शब्दों को स्त्री लिंग में परिवर्तित कर दिया है। इस दृष्टि से 'वासना की डर', 'सौधों की स्वर्ण शिखर' 'वन की मर्मर', 'छोटी छाता' आदि प्रयोग उल्लेखनीय हैं। इसी क्रम में पंत ने 'खुले पलक', 'हृदय के सुरभित सांस' 'पल्लवों की यह सजल प्रभात' जैसे प्रयोग किए हैं। इस तरह की व्याकरणिक अराजकता खटकती है। अवगुंठित के लिए 'अगुंठित', मकरंद के लिए 'मरंद ', वास्तविकता के लिए 'वास्तवता', और के लिए 'औ' , अनिवाचनीय के लिए 'अवचनीय' आदि प्रयोग काव्य-भाषा को भावानुकूल बनाने के लिए उचित माने जा सकते हैं। लकिन यहाँ इतना ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा कि 'गद्य कवियों की कसौटी है।' अतः गद्य के व्याकरण की बहुत अधिक अवहेलना से कविता में दुर्बोधता की संभावना बढ़ जाती है। पंत की कविता में सामासिक चिह्नों के लोप कारकों की अनुपस्थिति, संधि के नियमों की अवहेलना आदि से सम्प्रेषण में अनेक स्थलों पर कठिनाई आयी है और कुछ प्रयोग अधिक खटकने के कारण समुचित प्रभावोत्पादन में बाधक भी सिद्ध हुए हैं। लेकिन सब मिलाकर पंत ने व्याकरण की किंचित अवहेलना द्वारा भाषा को अधिक प्रभावोत्पादनक्षम बनाने का ही प्रयास किया है।

12.3 पंत की काव्य-शैली

12.3.1 अप्रस्तुत विधान : सम्मूर्तन विधान (अमूर्त एवं मूर्त के संदर्भ में)

पीछे आप देख चुके हैं कि पंत भाषा के अत्यन्त निपुण शिल्पी हैं। शब्दावली, शब्द चयन, शब्दायोजन और नवीन शब्दों के निर्माण द्वारा इन्होंने अपनी काव्य भाषा को अत्यधिक संप्रेषणशील बनाने का सफल प्रयास किया है। बावजूद इसके कोई भी भाव-प्रवण कवि केवल भाषा की अन्तर्बाह्य क्षमताओं के आधार पर अपने कथ्य को पूर्णत: संप्रेषणीय नहीं बना सकता। फलस्वरूप उसे किसी न किसी रूप में प्रस्तुत (कथ्य) को पाठक के मनसपटल पर साकार करने के लिए अप्रस्तुतों की योजना करनी ही

पड़ती है। इस काव्य-व्यापार को प्राचीन काव्य शात्रियों ने अलंकार योजना का नाम दिया है। परम्परागत अंलकार शास्त्र की दृष्टि से पंत या किसी भी छायावादी कवि की अप्रस्तुत योजना संबंधी कौशल को उद्‌घाटित कर पाना कठिन है। परम्परागत दृष्टि से देखा जाए तो पंत की अप्रस्तुत योजना के मुख्यतः तीन वर्ग किए जा सकते हैं :

1. साम्यमूलक अप्रस्तुतयोजना
2. वैषम्यमूलक अप्रस्तुत योजना।
3. वैचित्र्य मूलक अप्रस्तुत योजना।

साम्यमूलक अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत ऐसे अप्रस्तुतों का विधान किया जाता है, जिनके माध्यम से प्रस्तुत (कथ्य) के स्वरूप, धर्म (गुण) और प्रभाव-साम्य को अत्यधिक हृदय ग्राही बनाया जाता है। पंत ने उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा जैसे परंपरागत अलंकारों के माध्यम से अपनी साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना के कौशल का पूरा परिचय दिया है। इनके माध्यम से इन्होंने रूप साम्य, गुण साम्य और प्रभाव साम्य को संमूर्तित करने का सफल प्रयास किया है। लेकिन मूर्त के अमूर्तन द्वारा और अमूर्त के सम्मूर्तन द्वारा इस क्षेत्र में जिस पद्धति का सहारा कवि ने लिया है, उसे उपमा, उत्प्रेक्षा आदि के बंधन में बाँध कर विवेचित विश्लेषित कर पाना कठिन है।

प्रायः यही स्थिति पंत के वैषम्य मूलक अप्रस्तुत विधान में भी दिखायी देती है। मौन-मुखर, मौन गुंजरण, मौन-पुकार, नीरव भाषण , जलता शीतल, खोकर पाना आदि प्रयोग इसके सशक्त उदाहरण माने जा सकते हैं। इसी प्रकार चमत्कार मूलक अप्रस्तुत-योजना के लिए कवि ने उक्ति की वक्रता, श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि का सहारा लिया है। इसके लिए कवि ने अन्यान्य विधियों के साथ ही विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण, ध्वन्यार्थ व्यंजना जैसे पाश्चात्य अलंकारों का भी सहारा लिया है, जिस पर आगे यथा स्थान विचार किया जाएगा। इस दृष्टि से जो सर्वाधिक विचारशील तथ्य है, वह यह कि अप्रस्तुत योजना की परम्परागत परिपाटी की दृष्टि से विचार कर हम पंत के इस कौशल का समुचित मूल्यांकन नहीं कर सकेंगे। पंत द्वारा अन्वेषित नयी युक्तियों को ध्यान में रखकर एक नयी प्रणाली को स्वीकार करना पड़ेगा। इसे सम्मूर्तन विधान की संज्ञा देना हमारे लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है।

सम्मूर्तन विधान : महादेवी वर्मा की काव्य शैली के विवेचन विश्लेषण में आप देख चुकें हैं कि उन्होंने कथ्य को सम्मूर्तित या प्रतिबिम्बित करने के लिए एक विशेष प्रकार की अप्रस्तुत योजना की है। पंत ने भी प्रस्तुत को अत्यधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए सम्मूर्तन की पद्धति का सहारा लिया है, जिसे अध्ययन की सुविधा के लिए हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैः

1. मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों की योजना,
2. मूर्त के लिए अमूर्त प्रस्तुतों की योजना,
3. अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों की योजना और
4. अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों की योजना।

1. **मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत** : मूर्त के लिए मूर्त का अप्रस्तुत विधान प्रायः साम्यमूलक उपमानों पर ही आधारित होता है। यह अधिकांशतः परम्परागत पद्धति ही है, जिसका अत्यंत कौशल के साथ पंत ने अपने काव्य में समावेश किया है। कुछ उदाहरणों द्वारा आप यह आसानी से समझ सकते हैः

   निर्जन गोपथ अब धूलिहीन,
   घूसरभुजंग सा जिह्व-क्षीण।

   यहाँ संध्या के चित्रण में धूलिहीन निर्जन पगडण्डी (गोपथ) के मूर्त रूप को पतले मटमैले रंग के साँप (भुजंग) के मूर्त अप्रस्तुत द्वारा प्रतिबिम्बित कराया गया है। इसके लिए दूसरा उदाहरण है :

   तिररही खोल पालों के पर।

   यहाँ खेल पालों से युक्त छोटी-सी नौका (तरणि के) के धीरे-धीरे तैरने के मूर्त प्रस्तुत को अपने श्वेत पंख फैलाए हंसिनी के धीरे-धीरे तैरने के अप्रस्तुत द्वारा दृष्टि गोचर बनाया गया है।

2. **मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत :** अन्य छायावादी कवियों की भांति पंत ने भी अपने भाववादी दृष्टि कोण के कारण प्रस्तुत मूर्त वस्तुओं को अमूर्त अप्रस्तुत द्वारा अत्यंत कौशल और चमत्कारपूर्ण ढंग से मानस-प्रत्यक्ष कराया है। इस दृष्टि से पंत की बादल शीर्षक कविता विशेष उल्लेखनीय है। इसके लिए एक उदाहरण है :

धीरे-धीरे **संशय** से उठ, बढ़ अपयश से शीघ्र अछारे।
नभ के उर में उमड़ **मोह** से, फैल लालसा से निशि भोर।'

यहाँ मूर्त बादल की विभिन्न स्थितियों को अनेक अमूर्त अप्रस्तुओं द्वारा अत्यन्त प्रभावी ढंग से व्यंजित किया गया है। मूर्त बादल का अमूर्त संशय की तरह धीरे-धीरे उठना, अपयश की तरह तेज़ी से बढ़कर चारों ओर व्याप्त हो जाना, सारे आकाश में मोह की तरह उमड़-घुमड़ कर लालसा (आकांक्षा) की तरह सारे नभ को अच्छादि कर लेना- उर का अत्यंत काव्यात्मक प्रभावांकन है। संध्या, प्रातः, चाँदनी, चाँद आदि के सम्मूर्तन में पंत ने प्रायः इसी पद्धति का सहारा लिया है।

3. **अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत :** अन्य छायावादी कवियों की भाँति ही पंत ने भी अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त अप्रस्तुतों (उपमानों) का कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता इस प्रकार के विधान की सर्वोत्तम उपलब्धि मानी जा सकती है। इसमें अमूर्त परिवर्तन की निष्ठुरता को कवि ने सहस्र फन वाले वासुकि नाग, नृशंस (क्रूर) राजा के विध्वंसक क्रिया व्यापारों द्वारा अत्यंत प्रभावशाली ढंग से मानस प्रत्यक्ष कराया है। कामना, आशा, विश्वास, चेतना आदि को साकार करने के लिए पंत ने प्रायः इसी पद्धति का सहारा लिया है। कामना की सात्विक निर्मलता और स्मृति के तीव्र वेग के प्रत्यक्षीकरण से सम्बद्ध एक उदाहरण दर्शनीय है :

परित्यक्ता वैदेही सी ही, अब हृदय कामना उठी निखर।
नीरव नभ में विद्युत धनसी, एकाकी स्मृति जगती क्षण में

यहाँ कवि ने कामना के निखार और स्मृति के प्रखर वेग को क्रमशः 'परित्यक्ता वैदही (सीता) और ' नीरव नभ में विद्युत घन' से सम्मूर्तित किया है।

4. **अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत :** पंत ने अपने 'स्वर्ण काव्य' में अमूर्त प्रस्तुत (कथ्य) के लिए प्रायः अमूर्त अप्रस्तुतों (उपकरणों) का सहारा लिया है। इसके लिए एक उदाहरण है :

सुख सपने सौरभ से उड़ते
चेतना समीरण सी बहती।

यहाँ 'सुख-सपनों' का सौरभ (सुंगधि) की तरह उड़ना और 'चेतना' का समीरण (वायु) की तरह प्रवाहित होना, उनके सूक्ष्म स्वरूप और प्रकृति का अत्यंत मार्मिक उद्घाटन है। इसके लिए एक दूसरा उदाहरण है :

'एक सौम्य चाँदनी भावना की चुपके से
स्वप्निल उर से लिपट गई - चंदन सौरभ सी।'

'एक सौम्य चाँदनी भावना का स्वप्निल उर (हृदय) से लिपटना अपने-आप में अत्यंत काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। लेकिन 'भावना' को 'चंदन-सौरभ' की भाँति स्वप्निल उर से लिपटना भावना के अत्यंत उदात्त और कोमल रूप की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पंत ने सम्मूर्तन कौशल को अपनी शैली का प्रमुख आधार बनाया है।

12.3.2 कतिपय पाश्चात्य अलंकारों की योजना

छायावादी कवियों ने प्राचीन भारतीय अलंकारों की जकड़बंदी से अपने को मुक्त करने के क्रम में कई पाश्चात्य अलंकारों को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इनमें मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वन्यार्थ व्यंजना जैसे अलंकार विशेष उल्लेखनीय हैं। पंत जी ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति में इन अलंकारों का अत्यंत कौशल के साथ उपयोग किया है। इनके अलग-अलग विवेचन-विश्लेषण से हम पंत की एतद्विषयक विशेषता को आसानी से समझ सकेंगे।

1. **मानवीकरण** : मानवीकरण शब्द अंग्रेज़ी के 'परसानिफिकेशन' का हिंदी अनुवाद है। इसे पाश्चात्य स्वच्छंदतावादी कवियों ने लाक्षणिक प्रयोग से भिन्न एक स्वतंत्र अलंकार के रूप में प्रतिष्ठा दी है। पंत ने अपने काव्य में इसका अत्यंत भाव-विह्वल होकर प्रयोग किया है। इन्होंने प्रकृति के मानवीकरण की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया है। इस दृष्टि से इनकी 'संध्या' शीर्षक कविता उल्लेखनीय है :

कहो, तुम रूपसि कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपा निज छाया में छवि आप,
सुनहला, फैला केश कलाप
मधुर मंथर मृदु, मौन!

यहाँ कवि ने संध्या को आकाश से धीरे-धीरे उतरने वाली एक अपूर्व सुंदरी युवती के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके आगे उसकी रूप सज्जा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है :

अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुर ध्वनि खग कुल रोल,
सीप-से जलदों के पर खोल,
उड़ रही नभ में मौन!

संध्या का यह मौन-मुखर और जीवंत चित्र पंत के मानवीकरण के कौशल का परिचायक है। पत की मानवीकरण संबंधी विशेषता को 'ज्योत्सना स्तुति', 'लीली के प्रति', 'ओस गीत', 'छायागीत', 'पवन गीत', 'किरणों का गीत', 'कनक किरण' आदि अनेक कविताओं के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

2. **विशेषण विपर्यय (ट्रांस्फर्ड एफिथेट)** : इसके अंतर्गत विशेषण को उसके उचित स्थान से हटाकर अन्यत्र रख दिया जाता है। जैसे, 'सिकता (बालू) को सस्मित सीपी पर, 'मोती की ज्योत्सना रही बिखर' में 'सस्मित' (मुस्कान) मनुष्य से संबंध रखती है, लेकिन उसे सीपी के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। प्रकृति एवं अमूर्त भावों के चित्रण में पंत ने इस अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग किया है। 'मूर्छित धरती', 'रोमांचित तलहटियाँ', 'पागल बयार', 'उन्मत्त पवन' आदि जैसे प्रयोगों में कवि ने मूर्च्छा, रोमांच, पागलपन, उन्माद जैसी मानवीय विशेषताओं को धरती, तलहटियों, बयार, पवन आदि के साथ सम्बद्ध कर दिया है। पंत ने अपने 'स्वर्ण काव्य' में अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए भी इस पद्धति का सहारा लिया है। जैसे, नग्न व्यथा, किशोर कारे स्वप्न', 'लूले लंगड़े जीवन मूल्य' आदि प्रयोगों में मनुष्य के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले विशेषणों को व्यथा, स्वप्न, जीवन मूल्य आदि अमूर्त भावों के साथ जोड़ दिया गया है। वैसे छायावादी काव्य-शैली के लिए इसे लाक्षणिक प्रयोग की संज्ञा भी दी जा सकती है।

3. **ध्वन्यार्थ व्यंजना (ऑनोमोटोपोयिया)** : नाद व्यंजना या अनुरणात्मकता से भिन्न ध्वनार्थ व्यंजना पाश्चात्य काव्य में एक विशिष्ट अलंकार के रूप में स्वीकृत है। इसके अंतर्गत प्रयुक्त ध्वन्यार्थक शब्द अपना अलग कोई अर्थ न रखकर अपनी उच्चरित ध्वनि द्वारा ही अपने अर्थ की व्यंजना करते हैं। पंत ने अपने काव्य में इस नये अलंकार का अत्यंत कौशल के साथ उपयोग किया है। 'झंझा में नीम' शीर्षक कविता से एक उदहारण है :

'सर् सर् मर् मर्/..... झूम-झूम झुक झुक कर/
सिहर् सिहर् थर् थर् थर्/ करता सर् मर्/
चर् मर्।/'

इसमें प्रयुक्त अधिकांश शब्द अपना निश्चित अर्थ न रखकर अपनी उच्चरित ध्वनियों से ही अपने अर्थ की व्यंजना करते हैं। इसी तरह पंत ने संध्या के समय चिड़ियों के कलरव का चित्रण करते हुए लिखा है :

बांसों का झुरमुट -/ संध्या का झुटपुट/
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ/ टो वी टी - टुट् टुट्।

यहाँ 'टी वी टी - टुट् टुट्' में ध्वन्यार्थ व्यंजना का सुंदर समावेश हुआ है। इसी प्रकार निर्झरों की 'झरझर', घनों की 'घहर', दादुरों (मेंढकों) की 'टर् टर्', हथौड़े की ठड्. ठड्. ठन्' 'छमाछम', 'झमाझम' आदि ध्वन्यार्थ मूलक शब्दों के माध्यम से पंत ने ध्वन्यार्थ व्यंजना का सुंदर प्रयोग किया है।

12.3.3 गति, नाद एवं लय की व्यंजना

पंत ने अपने काव्य में विशिष्ट पद-योजना के द्वारा गति, नाद एवं लय की भी सुंदर व्यंजना की है। गति के प्रभावांकन के लिए इनकी 'नौका विहार' शीर्षक कविता से एक उदाहरण लिया जा सकता है:

'मृदु मंद मंद मंथर मंथर, लघु तरणि, हंसिनी सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के पर।'

यहाँ उच्चरित ध्वनियों की लय के माध्यम से धीरे-धीरे हिचकोले खाती हुई मंद गति से तिरती हुई नौका का एक गतिशील चित्र मानस पटल पर अंकित हो जाता है। 'ग्राम्या' की 'चमारों का नाच' शीर्षक कविता का एक उदाहरण है :

ठनक कसावर रहा ठनाठन, थिरक चमारिन रही छनाछन।
.....
शोर, हँसी, हुल्लड़, हुड़दंग, धमक रहा घाग्ड़ांग मृदंग।
मारपीट बकवास झड़प में रंग दिखाती महुआ भंग।'

यहाँ विशिष्ट क्रिया-कलापों और वाद्य-यंत्रों से होने वाली नाद-व्यंजना चमारों के नृत्य का एक जीवंत दृश्य उपस्थित करती है। पर्वतीय वर्षा का चित्रण करते हुए कवि ने वर्षाकालीन वातावरण को नाद व्यंजना के माध्यम से इस प्रकार ध्वनित कराया है :

'पपीहों की वह पीन पुकार, निर्झरों की भारी झर-झर,
झींगुरों की झीनी झनकार, घनों की गुरूगंभीर घहर,
बिंदुओं (बूंदों) की छनती छनकार, दादुरों के वे दुहरे स्वर।'

यहाँ 'र' कार बहुल शब्दावली और अनुप्रास बहुल शब्दावली के माध्यम से कवि ने वर्षाकालीन वातावरण को श्रुतिगम्य बनाने का सफल प्रयास किया है।

12.3.4 बिम्ब-विधान (ऐन्द्रिक बिम्बों के संदर्भ में)

काव्य-व्यापार में अर्थग्रहण की अपेक्षा बिंबग्रहण को अधिक महत्व दिया गया है। प्रस्तुत या कथ्य का सीधे वर्णन करने की अपेक्षा उससे मिलते-जुलते अप्रस्तुतों के माध्यम से इंद्रिय ग्राह्य बनाना एक महत्वपूर्ण कवि कर्म है। इसकी सिद्धि बिम्बविधान के माध्यम से होती है, जिसे छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टि से पंत की काव्य-शैली उल्लेखनीय है। इन्होंने सभी इन्द्रिय बोधों से संबद्ध बिम्बों का विधान अपने काव्य में किया है, जिन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

1. चाक्षुष बिम्ब, 2. श्रव्य बिम्ब, 3. स्पर्श बिम्ब, 4. घ्राण या गंध बिम्ब और 5. आस्वाद्य बिम्ब।

1. **चाक्षुष बिम्ब** : रूप-विधान काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, अतः काव्य में चक्षु या नेत्र-ग्राह्य बिम्बों की प्रधानता होती है। कविवर पंत के एतद्विषक बिम्ब अत्यंत मनोरम हैं। प्रकृति से मूल प्रेरणा ग्रहण करने के कारण उसके सूक्ष्म निरीक्षण की सर्वाधिक क्षमता पंत में विद्यमान है, अतः प्रकृति निरीक्षण विषयक चाक्षुष बिम्बों के निर्माण में पंत ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। अपनी 'नौका विहार' शीर्षक कविता में कवि ने चाँदनी रात में, ग्रीष्म कालीन गंगा का एक भाव प्रवण चाक्षुष बिम्ब इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

शांत, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल,
अपलक अनंत, नीरव भूतल!
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लान्त, निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल!

गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुंदर,
चंचल अंचल सा नीलांबर!
साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर!

यहाँ चाँदनी रात के शांत वातावरण में सम्पूर्ण परिवेश के साथ ग्रीष्मकालीन निर्मल गंगा का तापस बाला के रूप में एक भव्य बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए कवि ने पहले शांत, कोमल चाँदनी में शून्य आकाश और नीरव पृथ्वी का प्रभावशाली वातावरण उपस्थित किया है। इसके बाद रेती की सेज पर दुग्ध धवल पतले अंगों वाली थकीमांदी गंगा को आराम से लेटे हुए दिखाया गया है। गंगा के ऊपर चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को लेकर कवि ने कल्पना की है कि जैसे गंगा अपने चन्द्र मुख को हथेली पर टिकाए हुए है और लहरों के रूप में उसके वक्षस्थल पर रेशमी बाल लहरा रहे हैं। नीलांबर ही उसकी साड़ी है, जिसके आंचल पर तारों के रूप में सलमें सितारे खिंचे हुए हैं। गंगा में उठने वाली हल्की लहरें ही उसकी रेशमी श्वेत साड़ी की सिकुड़न हैं। गंगा का ऐसा सांगोपांग दृष्टिगोचर मनोरम बिम्ब समूचे छायावादी काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस प्रकार के संश्लिष्ट बिम्बों की दृष्टि से 'एक तारा', 'बादल', 'ग्राम श्री', 'परिवर्तन' आदि कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से कई कविताएँ आप के पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं, जिन्हें अवश्य देख लें ।

चाक्षुष बिम्बों के निर्माण में पंत की अत्यंत सूक्ष्म वर्ण या रंग चेतना (सेंस ऑफ कलर) ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। यह चेतना भी पंत को प्रकृति निरीक्षण से ही प्राप्त हुई है। लालिमा, अरूणाभा, रक्ताभा, नीलिमा, नीलाभा, पीतिमा, पीताभा, हरीतिमा, हरिताभा, स्वर्णिम, स्वर्णाभा, धवलिमा, धवलाभा आदि शब्दों के प्रयोग के माध्यम से पंत ने अपने रंग परिज्ञान का अद्‌भुत परिचय दिया है, जिससे आप पंत-काव्य के निर्धारित पाठ्यक्रम के माध्यम से अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। यहाँ वर्ण परिवर्तन (चेंज ऑफ कलर) का एक गतिशील चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल,
है मूँद चुका अपने मृदु दल
लहरों पर स्वर्ण रेख सुंदर पड़ गयी नील, ज्यों अधरों पर,
अरूणाई प्रखर शिशिर से डर।

संध्या काल में गंगा के चंचल जल में सूर्य के लाल प्रतिबिम्ब के डूबने को रक्तोत्पल (लाल कमल) द्वारा अपनी पंखुडियों को बंद करने के दृश्य द्वारा रूपायित किया गया है। संध्या काल में सूर्यास्त के पूर्व गंगा की लहरों की स्वर्णरेखा के नीलिमा में परिवर्तित होने के दृश्य को कवि ने प्रखर शीत के कारण बच्चों के कोमल लाल अधरों के नीले पड़ जाने के अप्रस्तुत द्वारा प्रतिबिम्बित कराया है। इस प्रकार की रंग-योजना के अत्यंत गतिशील बिम्ब पंत के काव्य में प्रचुरता से मिलते हैं।

2. **श्रव्य बिम्ब** : श्रव्य के श्रवण संबंधी ध्वनि बिम्ब के निर्माण में भी पंत छायावाद के अन्य कवियों की भाँति अत्यंत निपुण हैं। ध्वन्यार्थ व्यंजना के संदर्भ में आप इस तथ्य से परिचित हो चुके हैं। ध्वन्यार्थक और अनुरणनात्मक शब्दों की मुखर व्यंजना के साथ ही पंत ने मौन की मुखरता को भी प्रतिध्वनित कराया है। 'एक तारा' कविता से इसका एक उदाहरण है :

'पत्तों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर
....
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशांति को रहा चीर
संध्या प्रशांति को कर गंभीर।'

यहाँ संध्या की नीरव शांति को झींगुरों के स्वर के प्रखर तीर द्वारा और अधिक गंभीर बताना एक प्रकार से मौन को मुखर बनाना है। पंत जी ने जिस प्रकार कोमल और मधुर भावों की अभिव्यक्ति के लिए कर्ण सुखद पदावली का प्रयोग किया है, उसी कौशल से पुरुष या कठोर भावों की

अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल समुचित पदावली का भी उपयोग किया है। निष्ठुर परिवर्तन के विध्वंसक ताण्डव नृत्य का श्रव्य बिम्ब प्रस्तुत करते हुए पंत ने लिखा है :

'अहे वासु कि सहस्रफन
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर,
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर!
शत् शत् फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगर्ता का अंबर,
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत कंचुक कल्पांतर
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल
दिङ्. मण्डल।'

इस पूरे काव्यांश की उच्चारण ध्वनि पाठक की श्रवणेन्द्री के माध्यम से परिवर्तन के विध्वंसक चित्र को मानस पट पर अंकित कर देती है। 'निर्झरी' कविता में पंत ने छोटी निर्झरिणी के व्योम निनाद को अत्यंत श्रवण सुखद बनाकर प्रस्तुत किया है :

यह कैसा जीवन का गान, अलि! कोमल कल् मल् टल् मल्?
ओ री शैल बाले नादान! यह निश्छल कल् कल् छल् छल्?
झर् मर् कर पत्तों के पास, रण् मण् रोड़ो पर सायास,
हँस हँस सिकता से परिहास, करती तुम अविरल झलमल!

यहाँ कल् मल्, टल् मल्, कल् कल्, छल् छल्, झर् मर्, झल् मल् आदि व्यंजनांत ध्वनियों से कवि ने निर्झरिणी की कोमल मधुर ध्वनि को श्रवण गम्य बनाया है।

3. **स्पर्श बिम्ब** : पंत मुख्यतः मृदुल-कोमल भाव के कवि हैं। मृदुता और कोमलता का सीधा संबंध स्पर्शेन्द्री से है। अतः अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति में भी पंत ने पाठक की स्पर्श-चेतना को उद्‌बुद्ध करने का सफल प्रयास किया है। कवि ने विभिन्न कोमल रंगों रेशम, मखमल, मंद मसृण (कोमल) समीरण आदि के माध्यम से पाठक की स्पर्श चेतना को उद्‌बुद्ध किया है। अनेक पदार्थ दृश्य होते हैं पर हम उन्हें छू नहीं सकते। उदाहरण के लिए धूप, अंधकार के विविध रूपों के साथ ही हम रंगों को छू नहीं सकते। लेकिन कल्पना के द्वारा हृदय पर पड़ने वाले इनके प्रभाव के माध्यम से इनके स्पर्श की विशेषता का अनुभव आसानी से किया जा सकता है। इस दृष्टि से यहाँ पंत का एक उदाहरण विचारणीय है :

'मृदु मृदु स्वप्नों से भर अंचल,
नव-नील नील, कोमल, कोमल,
छाया तरूबन में तम श्यामल।'

यहाँ कोमल के साथ 'श्यामल' पद की योजना कर कवि ने पाठक की स्पर्श चेतना को उद्‌बुद्ध किया है। इसके लिए कुछ अन्य उदाहरण भी लिए जा सकते हैं :

गंध तुहिन से ग्रथित रेशमी पट सा मसृण समीरण।
रंग रंग के वनफूलों से गुंफित मखमल के शाद्वल।

यहाँ रेशमी वस्त्र सा मसृण (कोमल) समीरण और मखमल के शाद्वल आदि स्पर्श बोध से युक्त पदावली द्वारा कवि ने समीरण (वायु) और शाद्वल से पाठक की स्पर्श चेतना को उद्‌बुद्ध किया है। इसी प्रकार 'ग्राम श्री' कविता का एक चाक्षुष, किंतु स्पर्श मूलक चित्र है :

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली
लिपटी जिससे रवि की किरणें
चाँदी की सी उजली जाली।

यहाँ मखमल की कोमल हरियाली और शीतकालीन रवि की किरणों की जाली स्पर्श बोध को जाग्रत करती है। लेकिन नेत्रों के माध्यम से ही यहाँ स्पर्श बोध को अस्तित्व प्राप्त हुआ है।

4. **घ्राण या गंध बिम्ब** : प्रस्तुत को संवेदनीय बनाने के लिए ही पंत ने गंध का प्रायः अप्रस्तुत के रूप में उपयोग किया है। स्वतंत्र रूप से गंध बिम्बों का प्रयोग इनके काव्य में कम ही मिलता है। उदाहरण के लिए 'स्वर्ण किरण' की एक पंक्ति दर्शनीय है :

'तप्त कनक द्विति देह, सहज चंदन सी वासित।'

यहाँ 'चंदन सी वासित' गंध चेतना द्वारा 'कनक द्विति (स्वर्णाभा) वाली देह की रमणीयता में वृद्धि की गयी है। वैसे 'ग्राम श्री' कविता में फसलों के वातावरण को जीवंत बनाने के लिए गंध का उपयोग स्वतंत्र रूप से इस प्रकार किया है :

'उड़ती भीनी तैलाक्त गंध
फूली सरसों पीली पीली,
लो, हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कलि तीसी नीली।'

सरसों और तीसी की तैलाक्त गंध यहाँ फसलो के रमणीय वातावरण को हृदय संवेद्य बनाती है। अन्यत्र पंत प्रायः अप्रस्तुत के रूप में ही गंध का प्रस्तुत के स्वरूप को हृदय संवेद्य बनाने के लए उपयोग करते हैं। यथा :

'सुख-सपने **सौरभ से उड़ते**'
'एक सौम्य चांदनी भावना की चुपके से
स्वाप्निल उर से लिपट गयी **चंदन सौरभ** सी।'

यहाँ सुख-सपने का **सौरभ की तरह उड़ना** और एक दिव्य भावना का 'चंदन सौरभ' की तरह स्वप्निल हृदय से लिपटना प्रस्तुत या कथ्य का बिम्ब ग्रहण कराना है।

5. **आस्वाद्य बिम्ब** : अपनी भावना प्रधानता के कारण छायावादी कवियों ने आस्वाद्य बिम्बों या रसना के स्वाद संबंधी बिम्बों का प्रयोग प्रायः नहीं किया है। पंत के यहाँ भी आस्वाद्य बिम्बों का नितांत अभाव है। मधुर, कटु-तिक्त आदि स्वाद संबधी प्रयोग प्रायः भावना एवं चिंतन के संदर्भ में ही आए हैं।

इस प्रकार पंत की बिम्ब योजना कथ्य के अर्थ ग्रहण से परे उसका बिम्ब ग्रहण कराने के कलात्मक उद्देश्य से प्रेरित है। इनमें इस कलात्मकता का आग्रह प्रायः छायावादी चरण तक ही रहा है। अतः इसके बाद वे अपने 'स्वर्ण काव्य' या अन्तश्चेतनावादी परवर्ती काव्य में बिम्बों की अपेक्षा प्रतीकों का अधिक सहारा लेने लगे हैं। यही स्थिति उनके सम्मूर्तन विधान में भी दिखायी देती है। छायावादी चरण तक ही इसके प्रति उनका आग्रह रहा है, लेकिन आगे चलकर वे इस कार्य के लिए भी प्रायः प्रतीकों का सहारा लेने लगे हैं। वैसे प्रतीकात्मकता के प्रति उनका लगाव आरंभ से ही रहा है, लेकिन परवर्ती रचनाओं में यह आग्रह लगभग मोह का रूप ग्रहण करने लगता है। अतः प्रतीक योजना की दृष्टि से पंत की काव्य शैली पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

12.3.5 प्रतीक विधान

प्रतीक, बिम्ब साम्य-वैषम्य मूलक अप्रस्तुत योजना से भिन्न केवल संकेत द्वारा ही कथ्य की विशिष्टता अथवा उसके प्रभाव की ओर इंगित करते हैं। ये भी एक तरह से लाक्षणिक प्रयोग ही हैं, जो छायावादी काव्य शैली की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। बावजूद इसके, प्रतीक लक्षणा की सीमा का अतिक्रमण कर प्रायः व्यंजना के क्षेत्र में प्रवेश करते दिखायी देते हैं। जिस प्रकार अप्रस्तुत विधान, सम्मूर्तन विधान अथवा बिम्ब विधान सामान्य भाषा की अक्षमता के कारण अस्तित्व ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार प्रतीक भी। इसे भी काव्य शैली के अंतर्गत ही स्वीकार किया जाता है। अपने परवर्ती काव्य में पंत निरंतर प्रतीकात्मकता की ओर अग्रसर हुए हैं। 'कला और बूढ़ा चाँद' तक पहुँच कर इनके तथाकथित सत्यान्वेषण की प्रकृति ने प्रतीकात्मकता को और अधिक गहन कर दिया है। सत्य को शब्दों से परे, अनिर्वचनीय मानते हुए पंत ने 'कला और बूढ़ा चाँद' की 'अखंड' शीर्षक कविता में भाषा और शब्दों की अपर्याप्तता को रेखांकित करते हुए लिखा है :

'मैं शब्दों की
इकाइयों को रौंद कर

संकेतों में
प्रतीकों में बोलूँगा'

अतः पंत के काव्य शिल्प के समुचित उद्‌घाटन के लिए इनकी प्रतीक योजना पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है। प्रतीक योजना की दृष्टि से पंत के काव्य में प्रतीकों के स्वरूप या उनकी रूप-रचना को देखते हुए इन्हें दो युगों में विभक्त करना अध्ययन की सुविधा के लिए अधिक उपयुक्त होगा। ये युग हैं:

1. छायावादी युग और
2. अंतश्चेतना पर आधारित अध्यात्मवादी-समन्वयवादी युग

1. **छायावादी युग का प्रतीक विधान** : अन्य छायावादी कवियों की भाँति ही पंत के छायावादी युग के प्रतीक प्रायः प्रकृति, मानव-जीवन, नारी-सौंदर्य, प्रणय-भावना आदि से जुड़े हुए हैं। इसके अंतर्गत संध्या, प्रातः, चाँदनी, सूर्य, चाँद, तारा, दर्पण, प्राची, पावस, वसंत, बादल, मधुप, ज्योति, मधुवन, वंशी, वीणा, पवन, सुरभि, सुमन आदि को विशेष रूप से प्रतीक का विषय बनाया गया है। 'एक तारा' कविता में पंत ने संध्याकालीन परिवर्तनशील वातावरण का तल्लीनता से चित्रण करते हुए अंत में पश्चिमी आकाश में एक तारे का उदय दिखाया है। एक तारे को 'शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र और सम' बताते हुए उसे इन्होंने, ब्रह्म का प्रतीक मान लिया है। जिस प्रकार ब्रह्म द्वारा अपने अकेलेपन से मुक्ति के लिए अनेक में परिवर्तित करने की इच्छा से सृष्टि की रचना होती है, उसी तरह एक तारे के बाद अनेक तारों का उदय भी 'ए कोड हं बहुस्यामि' की मान्यता को प्रतीकित करता है :

जगमग जगमग नभ का आंगन लद गया। कुंद कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग दर्शन!

'एक तारा' की भाँति ही 'नौका विहार' कविता में पंत जी ने ग्रीष्म कालीन गंगा की क्षीण धारा का एक नवयुवती के रूप में मानवीकरण करते हुए चांदनी रात के चित्रण में अपने सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण को बिना कोई क्षति पहुँचाए अंत में कहा है :

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम
....
शाश्वत जीवन नौका विहार।

यहाँ कवि ने नौका-विहार को जीवन की शाश्वतता का प्रतीक मान लिया है। इसी प्रकार 'चाँदनी : एक' शीर्षक कविता में पंत ने चाँदनी का कल्पनामय भव्य चित्रण करते हुए अंत में उसे ब्रह्म का प्रतीक मान लिया है :

वह है, वह नहीं, अनिर्वच, उसमें जग, वह जग में लय,
साकार चेतना सी वह, जिसमें अचेत जीवाशय!

'अप्सरा' शीर्षक कविता की भी लगभग यही स्थिति है। इसमें पंत ने अप्सरा का मोहक एवं कल्पना-प्रवण चित्रण करते हुए उसे सांसारिक प्रपंच और सुख-दुख से परे अनिवर्चनीय शाश्वत सौंदर्य का प्रतीक बना दिया है। 'गा कोकिल' में कोकिल को क्रांति का अग्रदूत तो 'द्रुत झरो' में पतझर को नवयुग का प्रतीक बनाकर उपस्थित करना पंत की विशेषता मानी जा सकती है। 'खद्योत' (जुगनू) इनके यहाँ जीवन के घने अंधकार में 'मानव आत्मा का प्रकाश कण बन कर आता है। उपर्युक्त कविताओं के साथ ही 'मौन निमंत्रण', 'ओस गीत', 'तारा गीत', 'विहग गीत' आदि कविताओं में भी पंत ने अपनी रहस्य-भावना और जिज्ञासा भावना के माध्यम से प्रतीकात्मकता का समावेश किया है। अपनी 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पंत ने सामाजिक बदलाव को परिवर्तन के एक विराट प्रतीक द्वारा संकेतित किया है। लेकिन यहाँ सामाजिक बदलाव की मूल कारक शक्तियाँ प्रायः ओझल हो जाती हैं। समूचे परिवर्तन को इन्होंने प्रकृति के हवाले कर उसे प्रायः वायवी (हवाई) और काल्पनिक बना दिया है। इन्हें परिवर्तन के विध्वंसकारी रूप के कारण सांसारिक-सुख अरण्य रोदन (जंगल में रोना) प्रतीत होता है :

वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार, शांति, सुख है उस पार!

मूँदती नयन मृत्यु की रात, खोलती नव जीवन का प्रात।'

जीवन और मृत्यु के बीच मानव-जीवन के सार्थक क्रिया-कलाप पंत जी को दिखायी ही नहीं देते।

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से ऐसा लगता है कि पंत के छायावाद युगीन प्रतीक अधिकांशतः आरोपित हैं। प्रतीकों की जड़ें जब तक समाज के जातीय-जीवन के यथार्थ की जड़ों से गहराई से नहीं जुड़तीं तब तक उनमें पूर्ण प्रभाव-क्षमता नहीं आ पाती। यह कमी पंत के छायावाद युगीन प्रतीक-विधान में दिखायी देती है। व्यक्तिगत भावना और कल्पना पर अधिक आश्रित होने के कारण इनके प्रतीकों की सार्थकता प्रायः लुप्त हो जाती है।

2. **अंतश्चेतना पर आधारित आध्यात्मवादी - समन्वयवादी युग** : 'स्वर्ण किरण' से लेकर 'लोकायतन' तक का पंत का काव्य अधिकांशतः चिंतन एवं दर्शन प्रधान हो गया है। अतः इस युग में इनके प्रतीक वैचारिक-चिंतन पर आधारित हो गए हैं। 'स्वर्ण् धूलि' से लेकर पंत की अधिकांश काव्य-कृतियाँ 'स्वर्ण काव्य' के अंतर्गत आती हैं। यहाँ 'स्वर्ण' शब्द स्वयं अंतश्चेतना का प्रतीक है। इसका एक उदाहरण यहाँ दर्शनीय है :

'स्वर्ण बालुका किसने वरसा दी रे जगती के मरुस्थल में,
सिकता पर स्वर्णांकित कर स्वर्गिक आभा जीवन मृग जल में।
स्वर्ण रेणु मिल गयीं न जाने कब धरती की मर्त्य धूलि से,
चित्रित कर, भर दी रज में नव जीवन ज्वाला अमर तूलिका से।'

यहाँ 'स्वर्ण बालुका' दिव्य चेतना की प्रतीक है, 'मरुस्थल' सांसारिक दुखों से दग्ध भौतिक मन का प्रतीक है तथा 'ज्वाला' उस महाचेतन का गुण है, जो भौतिक मन से वासना को जलाकर राख कर देता है। स्वर्ण किरण की 'अशोक वन' कविता में राम कथा और उसके पौराणिक पात्रों का प्रतीकवत प्रयोग इस प्रकार हुआ है :

'रावण था युग वैभव प्रतिभा, अमित प्रताप बुद्धि बल गरिमा,
....
धरती की आकांक्षा सीता, त्रिभुवन के पति से परिणीता।'

यहाँ 'रावण' पृथ्वी के अज्ञान अर्थात् वैभव, प्रतिभा, प्रताप, बुद्धि की गरिमा से युक्त भौतिक सभ्यता का प्रतीक है और 'सीता' पृथ्वी की चेतना अर्थात् ब्रह्म की चेतना-शक्ति है जो राम (ब्रह्म) से विवाहित है। राम स्वयं दिव्य-चेतना के रूप में हैं। 'उत्तरा' की 'संवेदन' शीर्षक कविता में भी 'छाया सीता' नवीन चेतना का ही प्रतीक बनकर उपस्थित हुई हैं। 'कला और बूढ़ा चाँद' की भाषा शब्दार्थाश्रित भाषा न होकर प्रायः प्रतीकात्मक भाषा है। इसकी 'मधु क्षत्र', 'खोज', 'शरद् शील', 'रिक्त मौन', 'सहज गति', 'शील', 'अखंड' आदि अधिकांश कविताएँ प्रतीकात्मक भाषा में लिखी गयी हैं।

'लोकायतन' में पंत जी ने तमाम सारे पौराणिक प्रतीकों के साथ ही वर्तमान जीवन पर आधारित नये प्रतीकों का भी सहारा लिया है। सीता, लक्ष्मण, बाल्मीकि, रावण आदि पात्र इस महाकाव्य में प्रतीकवत् उपस्थित हुए हैं। बाल्मीकि का नव अवतार वंशी यहाँ स्वयं कविवर पंत का भी प्रतिनिधि बन जाता है और लक्ष्मण की भूमिका आगे चलकर हरि द्वारा सम्पन्न होती है। लक्ष्मण के रूप में हरि की चिंता राम राज्य के मूल्यों को लेकर ही नहीं, वरन् वर्तमान युग के सामाजिक मूल्यों से भी संबद्ध है। यहाँ उमा (गौरी या पावर्ती) जहाँ परा चेतना की प्रतीक बन कर उपस्थित हुई हैं, वहीं सीता विश्व चेतना की प्रतीक बन गयी हैं। लोकायतन में परात्पर सत्य (पार्वती) को विश्व चेतना (सीता) से संयुक्तकर पंत ने उन्हें धरती पर उतारा है। 'लोकायतन' की 'पूर्व स्मृति' में दिव्यता को जगत से परे न मानकर जागतिक-व्यापारों से जोड़कर देखा गया है। आगे चलकर इस व्यापार को वंशी और हरि के माध्यम से सम्पन्न कराया गया है। इन तथ्यों को 'पूर्व स्मृति' में रेखांकित कर पंत ने 'लोकायतन' के 'मुक्ति यज्ञ' का आरंभ गांधी की दाण्डी यात्रा से लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक का चित्रण किया है। यद्यपि इस महाकाव्य का संघर्ष (प्रतीकों के माध्यम से) बनाने का प्रयास किया है लेकिन इनके द्वारा निर्मित पौराणिक प्रतीक वास्तविक जीवन के यथार्थ से पूरी तरह जुड़ नहीं पाते। बावजूद इसके 'लोकायतन' अपनी प्रतीकात्मकता में प्रसाद की 'कामायनी' की तरह का एक भव्य स्वप्न है, जो मात्र स्वप्न तक ही सीमित रह सकेगा उसे व्यावहारिक रूप मिलना संभव नहीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पंत के प्रतीक उत्तरोत्तर दुरूह होते गए हैं, जिसका कारण इनकी दार्शनिक दुरूहता ही प्रतीत होती है। वस्तुतः तब तक प्रतीक सामाजिक यथार्थ की ठोस भूमि से जुड़कर लोक मानस को उद्वेलित नहीं करते तब

तक उनकी सार्थकता संदिग्ध ही बनी रहती है। इन कतिपय त्रुटियों के साथ पंत द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों की पर्याप्त सकारात्मक भूमिका है।

12.4 काव्य-रूप एवं छंद विधान

12.4.1 प्रगीत काव्य

अन्य छायावादी कवियों की भाँति पंत जी का अधिकांश काव्य प्रगीतात्मक है। इन्होंने 'छाया', 'प्रथम रश्मि', 'वीचि-विलास', 'मधुकरी', 'अनंग', 'नारी रूप', 'नक्षत्र', 'सांध्य-वंदना', 'तारागीत', 'किरणों का गीत' आदि अनेक संबोधन गीत भी लिखे हैं। शैली एवं विषय दोनों ही दृष्टियों से इनके प्रगीतों में विविधता दिखायी देती है। 'पल्लविनी' में पंत जी के 1940 तक के अधिकांश महत्वपूर्ण प्रगीत संकलित हैं। बाद के 'उत्तरा', 'अतिमा', 'वाणी' और 'किरण वीणा' में लघु प्रगीत संकलित हैं। प्रगीत काव्य में कवि जीवन के तीव्र क्षणों की अभिव्यक्ति के साथ ही अनुभव की तीव्रता, भावों की एकान्विति, संक्षिप्तता एवं संगीतात्मकता प्रमुख होती है। अतः प्रगीत काव्य की विशिष्टताओं को निम्नलिखित तत्वों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है, 1. संगीतात्मकता, 2. आत्माभिव्यक्ति, 3. भाव-प्रवणता, 4. भावान्विति, 5. संक्षिप्तता।

उपर्युक्त पाँचों तत्व पंत के प्रगीतों में विद्यमान हैं। अपने आरंभिक रचना काल से ही पंत संगीतात्मकता के प्रति अत्यंत जागरूक दिखायी देते हैं। वीणा से गुंजन तक कवि ने स्वरैक्य या स्वर मैत्री को गेयता का मुख्य आधार बनाया है, जिसमें तुकांतता का भी विशिष्ट योगदान है। 'अभिलाषा', 'आकांक्षा', 'निर्झरी', 'अनंग', 'मौन निमंत्रण', प्रथम रश्मि' आदि आरंभिक कविताओं में पंत ने गेयता का विशेष ध्यान रखा है। 'प्रथम रश्मि' की प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं :

> प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तूने कैसे पहचाना?
> कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि! पाया तूने यह गाना?

इसकी गेयता का मूलाधार 'इकार', 'आकार' की स्वर मैत्री है। इसमें बाल सुलभ जिज्ञासा का भाव ही प्रमुख है। 'पल्लव' के रचनाकाल तक कवि का यौवन सुलभ चिंतन मुखर हो उठा है। वस्तुतः इसमें कवि का यौवन गीत है, जो अनुभूति और उन्माद के संयम का अतिक्रमण कर सहज गति से प्रवाहित हुआ है। 'मौन निमंत्रण', 'अनंग', 'छाया', 'बादल', 'स्वप्न' आदि जैसी कविताएँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। 'गुंजन' पंत के प्रायः लघु गीतों का संग्रह है, जिसमें 'पल्लव' का अल्हड़ कवि पर्याप्त संयमित हो गया है। इस संग्रह की 'एक तारा', 'नौका विहार' आदि कविताएँ गेयता को एक नया रूप प्रदान करती हैं।

पंत ने अपने 'स्वर्ण काव्य' में भी लघु प्रगीतों को विशेष स्थान दिया है। ये प्रगीत आंतरिक संगीत से अनुप्राणित हैं। शब्द-संयोजन, अक्षर मैत्री, शब्द मैत्री, शब्द संगीत आदि के माध्यम से कवि ने इन कविताओं में गेयता का समावेश किया है। उदाहरणार्थ :

> झम झम झम मेघ बरसते रे सावन के,
> छम छम छम गिरती बूँदें तरूओं से छनके।'

यहाँ ध्वन्यात्मक शब्दों की आवृत्ति द्वारा एक विशेष प्रकार की संगीतात्मकता का समावेश किया गया है। सब मिलाकर पंत के प्रगीत काव्य की गेयता प्रसाद, निराला और महादेवी से भिन्न है। चाहे आत्माभिव्यक्ति हो या भावावेग, चाहे एकान्वित हो या संक्षिप्तता सभी दृष्टियों से पंत का प्रगीत काव्य उतना आकर्षक और मोहक नहीं बन पाया है, जितना कि अन्य छायावादी कवियों का। निराला ने अपनी 'जुही की कली' शीर्षक मुक्त छंद में रचित कविता में गति और लय के माध्यम से जिस ओजपूर्ण संगीतात्मकता का सहारा लिया है, वह पंत में दुर्लभ है। इसी प्रकार 'मैं अकेला', 'स्नेह निर्झर बह गया है' आदि प्रगीतात्मक कविताओं में निराला के व्यक्तित्व का जो साक्षात्कार होता है, वह भी पंत के प्रगीतों में नहीं मिलता। पंत की 'संध्या' और निराला की 'संध्या सुंदरी' कविता को मिलाकर भी दोनों की गेयता, भाव प्रवणता और एकांन्विति के अंतर को आसानी से समझा जा सकता है।

12.4.2 प्रबंधात्मक कथा एवं काव्य-रूपक

पंत अपने मुक्तक प्रगीतों के लिए ही अधिक प्रसिद्ध हैं। लेकिन उनकी दूसरी काव्य रचना 'ग्रंथि' अपने-आप में एक प्रेम कथा के क्षीण सूत्र को समाए हुए है। इसे आलोचकों ने कवि की प्रणय-कथा

के रूप में 'रेखांकित' करने का प्रयास किया है। लेकिन प्रबंधात्मक दृष्टि से पंत के काव्य रूपक विशेष महत्व रखते हैं। इलाहाबाद में रेडियो के कार्यक्रम से संबद्ध होने के बाद पंत ने लगभग एक दर्जन काव्य रूपकों की रचना 1950 से 1954 तक की। इससे पूर्व वे 'ज्योत्सना' शीर्षक से 1934 में अपनी काव्य-नाटिका प्रस्तुत कर चुके थे। यह एक रूपक काव्य का आभास देती है, जिसमें कथावस्तु अत्यंत क्षीण है। संध्या, छाया, इंदु (चन्द्रमा) ज्योत्सना पवन, सुरभि आदि इसके प्रमुख पात्र भावनाओं के पुलिंदे जैसे दिखायी देते हैं।

रेडियो से सम्बद्ध होने के बाद पंत ने 'विद्युत वसना', 'शुभ्र पुरुष', 'उत्तरशती', 'फूलों का देश', 'रजत शिखर', 'शरद्चेतना', 'शिल्पी', 'ध्वंस शेष', 'अप्सरा', 'स्वप्न और सत्य', तथा 'सौवर्ण' जैसे काव्य रूपक लिखे, जो अधिकांशतः विचार-प्रधान हैं। ये रूपक कवि के आत्म-संघर्ष से लेकर व्यक्ति और विश्व की सभी संभव समस्याओं पर विचार करते हुए अंत में जीवन-निर्माण के एक नवीन स्वप्नलोक से जुड़ जाते हैं। इनमें भी पंत के अरविन्दवादी अंतश्चेतना की समन्वयवादी भूमिका ही अधिक उजागर हुई है। नाट्य तत्वों की क्षीणता और काव्यत्व की प्रधानता के कारण स्वयं पंत भी इन्हें नाटक की अपेक्षा कथोपकथन प्रधान श्रव्य-काव्य ही कहना अधिक पसंद करते हैं। 'स्वर्ण धूलि' में संगृहीत 'मानसी' शीर्षक रचना गीतिनाट्य का उदाहरण मानी जा सकती है। सात दृश्यों में विभक्त इस गीति नाट्य की रचना एकांकी की पद्धति पर की गयी है। इसमें गीत, वाद्य, वेशभूषा आदि का भी समुचित विधान किया गया है।

प्रबंधात्मकता की दृष्टि से 1965 में प्रकाशित पंत का 'लोकायतन' शीर्षक महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय है। इसे कवि ने दो खंडों में प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम खंड 'बाह्य परिवेश' शीर्षक से रेखांकित है, जिसे चार उपशीर्षकों - पूर्व स्मृतिः आस्था, जीवन द्वार, संस्कृति द्वार और मध्य बिंदुः ज्ञान के अंतर्गत विभक्त किया गया है। इन उपशीर्षकों के अंतर्गत भी अनेक गौण शीर्षक आयोजित किए गए हैं।

इस महाकाव्य का द्वितीय खंड 'अंतश्चैतन्य' शीर्षक से रेखांकित है, जिसे तीन प्रमुख उपशीर्षकों कला द्वार, ज्योति द्वार और उत्तर स्वप्नः प्रीति - में विभक्त किया गया है। इस महाकाव्य में पंत जी ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रतीकों, विशेष रूप से रामकथा के पात्रों के माध्यम से प्राचीन के साथ नवीन को सम्बद्ध करने का कलात्मक प्रयास किया है। 'लोकायतन' का कथा-फलक सम्पूर्ण विश्व है। इसमें आने वाले थोड़े से पात्र, महात्मा गांधी को छोड़कर, कवि कल्पित और प्रतीकात्मक हैं, जो विश्व-चित्रपट के छायाभास मात्र हैं। इसमें कथा के सूत्र बिखरे हुए, परस्पर असंबद्ध और विच्छिन्न हैं। आरंभ और अंत भी आभास मात्र ही हैं। अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी समाजवादी देशों के अंतर्विरोध, उनकी भौतिक उन्नति आदि को रेखांकित करते हुए कवि भारतीय आध्यात्म के आधार पर भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय द्वारा एक नयी ग्राम सभ्यता के उदय की परिकल्पना करता है। इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, रोम, यूनान, रूस, स्वीडन आदि विकसित देशों की समृद्धि, उनकी वैज्ञानिक उन्नति के प्रति नतमस्तक होते हुए भी कवि को उनका विकास बहिर्मुखी और एकांगी लगता है :

'स्थूल भौतिकता का आधिक्य, विपद् भय का सूचक अविवाद,
....
प्रथम बदले भीतरी मनुष्य, बाहरी बदले तब संसार।'

लेकिन इस आंतरिक परिवर्तन के लिए कवि ने अरविंद दर्शन पर आधारित जिस अंतश्चैतन्य का सहारा लिया है, वह सामाजिक विकास और लोक कल्याण का कोई वैज्ञानिक और तर्क संगत मार्ग नहीं है। 'लोकायतन' के अंत में 'उत्तर स्वप्न' के अंतर्गत कवि संस्कृति के रथ को राजनीति के आगे चलता हुआ दिखाकर परस्पर विरोधी शिविरों को मिलाकर मंगलमय जन भू की रचना में लीन दिखाता है। यह कार्य भागवत चेतना अर्थात् विश्व चेतना द्वारा सम्पन्न होता है। इस प्रकार 'लोकायतन' में कवि की शुभेच्छा पर आधारित एक भव्य स्वप्न प्रस्तुत हुआ है, जो व्यावहारिक न होने पर भी आकर्षक है।

12.4.3 छंद विधान

भाषा, अप्रस्तुत विधान, बिम्ब-विधान, प्रतीक योजना आदि की भाँति ही छंद भी कविता के अनिवार्य बाह्य उपकरण हैं। युगानुकूल नये भाव, नयी संवेदना या नवीन विषय वस्तु के दबाव से इनके रूप-स्वरूप में भी निरंतर परिवर्तन होता गया है। छायावाद तक आते-आते छंद विधान में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। प्रगीत काव्य की अपेक्षाओं और कविता की गेयता को सुरक्षित रखते हुए प्रसाद, निराला और पंत ने नवीन छंदों के निर्माण के साथ ही परम्परागत मात्रिक छंदों में यथेष्ट

परिवर्तन किए हैं। इस दृष्टि से निराला ने छंदों से मुक्ति की घोषणा कर मुक्त छंद के रूप में स्वच्छंद छंद की अपनी क्रांतिकारी मान्यता का प्रतिपादन 'परिमल' की भूमिका में करते हुए लिखा है, 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना।' इस दृष्टि से निराला का प्रयास सर्वाधिक सराहनीय है। निराला ने अपनी प्रबंधात्मक लम्बी कविताओं में प्रायः परम्परागत शास्त्रीय छंदों का प्रयोग किया है। बावजूद इसके उन्होंने भावों के उन्मुक्त प्रवाह को कहीं अवरूद्ध नहीं होने दिया है। इसके लिए आप 'राम की शक्तिपूजा' के प्रथम पृष्ठ के पहले पैरे को एक बार अवश्य देख लें। इसमें निराला ने विभिन्न विराम चिह्नों के माध्यम से धारा प्रवाह युद्ध वर्णन करते हुए लम्बे अंतराल के बाद पूर्ण विराम की व्यवस्था की है। परम्परागत छंदों के प्रयोग में उन्होंने इसी विधि का सर्वत्र सहारा लिया है। इस दृष्टि से निराला के बाद पंत छायावादी कवियों में विशेष रूप से उल्लेनीय हैं।

पंत ने अपनी आरंभिक रचनाओं में तुक के प्रति अधिक आग्रह प्रकट किया है। लेकिन हिंदी के मात्रिक छंदों में यति, गति और यथेष्ट मात्रा परिवर्तन के द्वारा इसे भावानुकूल बनाने का भी प्रयास किया है। 'पल्लव' की 'परिवर्तन' शीर्षक लम्बी कविता में इनका छंद विधान अत्यंत सराहनीय माना जा सकता है। 'गुंजन' तक पहुँचकर इनकी छंद प्रयोग संबंधी प्रौढ़ता एक नया रूप ग्रहण करती है। इस संग्रह की 'नौका विहार', 'एक तारा' आदि कविताओं का छंद विधान अपनी गति, यति, तुक और आंतरिक लय के कारण अत्यंत प्रभावोत्पादक बन गया है। नौका विहार का एक उदाहरण है :

सैकत सै पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है भ्रांत क्लांत, निश्चल!
....
मृदु मंद मंद मंथर मंथर लघु तरणि हंसिनो सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के पर!

यहाँ छंद की गति, यति, तरन्नुम और तुक के साथ एकाकार हो गयी है। गंगा की शांत और उज्ज्वल धारा में मंदगति से तिरती हुई छोटी नौका के दृश्य को विशिष्ट पद योजना में आबद्ध कर कवि ने छंद के माध्यम से उन्मुक्त कर दिया है।

अपने 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'अतिमा' आदि 'स्वर्ण काव्य' के अंतर्गत पंत ने रीतिकालीन एवं द्विवेदी युगीन छंद रूढ़ियों से मुक्ति प्राप्त कर अनेक परम्परागत छंदों के परस्पर मिश्रण द्वारा लयों के आधार पर नवीन छंदों का निर्माण किया है। इनमें रोला, अरिल्ल, हरिगीतिका, त्राटक, पद्धरि, चौपाई, सखी आदि छंद विशेष उल्लेखनीय हैं। तुकांत छंदों के साथ ही पंत ने अपने स्वर्ण काव्य, विशेषतः काव्य रूपकों में अतुकांत छंदों का भी प्रयोग किया है। इनके अतुकांत छंदों में यति के नियमों की उपेक्षा अवश्य है, लेकिन विराम चिह्नों के माध्यम से गति और लय का पूरा ध्यान रखा गया है। अतुकांत के साथ ही अपने स्वर्ण काव्य में पंत ने मुक्त छंद अर्थात स्वच्छंद छंद का भी प्रयोग किया है। इनमें कहीं-कहीं कृत्रिमता भी आ गयी है। जैसे :

'यह जो भी हों,
टहनी के प्रत्येक मोड़ पर
जीवन की पग/डंडी के प्रत्येक/मोड़ पर
आज चटक उठ/ती चिनगारी,
प्रकृति मूक वि/द्रोह से भरी।'

यहाँ 'पग' के बाद 'डंडी', 'उठ' के बाद 'ती' और 'वि' के बाद 'द्रोह' से नयी पंक्ति का आरंभ छंदमुक्तता का भले ही परिचायक हो लेकिन इससे भावना का स्वच्छंद प्रवाह बाधित होता है। 'कला और बूढ़ा चाँद' की कविताओं में पंत ने मुक्त छंद का अपेक्षाकृत अधिक सफल प्रयोग किया है। मुक्त छंद के साथ ही नयी कविता की गद्यात्मकता का भी इन कविताओं में स्पष्ट प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ :

'ओ गीत खगी
ये बोलते पंख मुझे भी दो,
जो गाते रहते हैं, -
और,
वह मधु की गहरी परख, -

मैं भी
मधुपायी उड़ान भरूँगा।'

इस प्रकार छंद के क्षेत्र में भी पंत ने पर्याप्त प्रयोग किए हैं। बावजूद इसके, छंद के क्षेत्र में निराला की प्रयोगधर्मिता पंत में नहीं मिलती। निराला ने गति-यति, गण, मात्रा, तुक, गुरू लघु के सभी बंधनों का परित्याग कर छंद की एक नयी भूमि की प्रतिष्ठा की थी, जिसे पंत ही नहीं, नयी कविता के कवि भी उपलब्ध नहीं कर सके हैं। फिर भी पंत की भावभूमि और समग्र शिल्प विधान को देखते हुए इनका छंद विधान भी अत्यंत सफल कहा जा सकता है।

12.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने पंत की भाषा-शैली संबंधी विशेषताओं की विस्तृत जानकारी अवश्य प्राप्त कर ली होगी। हिंदी खड़ी-बोली को भारतेंदु युगीन लोक प्रचलित काव्य-भाषा और द्विवेदी युगीन व्याकरण सम्मत गद्यात्मक काव्य-भाषा के क्षेत्र से निकाल कर संस्कृतनिष्ठ काव्यात्मक-भाषा का रूप देने में पंत ने विशेष योगदान किया है। शब्दावली, शब्द चयन, शब्द-योजना, नवीन शब्द निर्माण की कवि सुलभ क्षमता के साथ ही पंत ने पदों में लय एवं गति की योजना द्वारा अपनी काव्यात्मक भाषा को जो संगीतात्मकता प्रदान की है, वह उसे प्रचलित लोक भाषा से भिन्न एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करती है। अपनी भावाभिव्यक्ति में आड़े आने पर इन्होंने हिंदी गद्य के व्याकरणिक नियमों के साथ ही संस्कृत के संधि, प्रत्यय आदि से संबद्ध नियमों का भी उल्लंघन करने में किसी तरह हिचक नहीं की है। संज्ञा शब्दों की अंतरात्मा की रक्षा के लिए इन्होंने हिंदी के लिंग एवं क्रिया संबंधी नियमों की पर्याप्त उपेक्षा की है। 'पल्लव' के रचनाकाल तक पंत की काव्य-भाषा का जो स्वरूप निर्धारित हो चुका था, आगे उसका निरंतर विकास हुआ है। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कुछ कविताओं को अपवाद के रूप में छोड़ दिया जाए तो 'लोकायतन' तक इनकी काव्य-भाषा के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं दिखायी देता। 'कला और बूढ़ा चाँद' में गति, यति, लय और तुक का आग्रह छोड़ने के बावजूद शब्दावली, शब्द-चयन और शब्द-योजना में पंत की कविता में किसी प्रकार का अंतर नहीं दिखाई देता। भाषा का यह स्वनिर्मित, सुनिर्धारित ढाँचा जहाँ एक ओर पंत की निरंतर काव्य-रचना में सहायक बना है, वहीं दूसरी ओर 'लोकायतन' जैसी लोकोन्मुख रचना में विषयानुकूल भावाभिव्यक्ति में बाधक भी सिद्ध हुआ है।

निराला की विषयानुकूल काव्य-भाषा की विविधता पंत में नहीं मिलती। 'जूही की कली' 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज स्मृति' जैसी अनेक कविताओं में परिमार्जित संस्कृतनिष्ठ काव्य-भाषा के प्रयोक्ता निराला ने 'बेला', 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' आदि की कविताओं में जिस लोक प्रचलित शब्दावली, मुहावरों, आंचलिक रंगत से युक्त हिंदी खड़ी बोली के जातीय स्वरूप को प्रस्तुत किया है, वह पंत के काव्य में दुर्लभ है। बाद में आने वाली कवियों की नयी पीढ़ी ने पंत की जगह निराला की काव्य-भाषा को अपना आदर्श बनाया। अतः कहा जा सकता है कि पंत की काव्य-भाषा की एक रूपता, एकरसता और एकतानता उसके आकर्षण को कम करती है।

काव्य-भाषा की भाँति ही पंत ने काव्य शैली की दृष्टि से भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है। इस दृष्टि से इनका अप्रस्तुत विधान विशेष उल्लेखनीय है। इस इकाई में पंत के अप्रस्तुत विधान को सम्मूर्तन विधान शीर्षक से विवेचित विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। इन्होंने मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों की योजना द्वारा कथ्य को जिस प्रकार सम्मूर्तित या व्यक्त किया है, वह छायावादी काव्य-धारा के लिए अप्रतिम है। आप के अध्ययन की सुविधा के लिए पंत की अप्रस्तुत योजना को इस इकाई में चार वर्गों में विभक्त कर विवेचित विश्लेषित किया गया है, 1. मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों की योजना, 2. मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों की योजना, 3. अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों की योजना और 4. अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों की योजना। इनके समुचित अध्ययन द्वारा आप पंत के सम्मूर्तन विधान या अलंकार-विधान की सभी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे। इस सम्मूर्तन विधान के साथ ही पंत ने मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, ध्वन्यार्थ व्यंजना जैसे पाश्चात्य काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है, जो छायावादी काव्य के अत्यंत प्रिय अलंकार है। पंत ने अपने काव्य में विशिष्ट पद योजना के द्वारा गति, नाद एवं लय की भी अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना की है, इस तथ्य को भी शैली के अंतर्गत इस इकाई में विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शैली की दृष्टि से पंत का बिम्ब और प्रतीक विधान भी उल्लेखनीय है। आपके अध्ययन की सुविधा के लिए पंत के बिम्ब विधान को चाक्षुष, श्रव्य, स्पर्श, घ्राण या गंध, और आस्वाद्य बिम्बों की पाँच श्रेणियों में विभक्त कर विवेचित विश्लेषित किया गया है। इनके अलग-अलग अध्ययन से आप पंत बिम्ब निर्माण के कौशल से अच्छी तरह परिचित हो सकेंगे।

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना के बाद पंत की काव्य-शैली लगातार अधिकाधिक प्रतीकात्मक होती गयी है। इसे स्पष्ट करने के लिए इनकी प्रतीक योजना संबधी विशेषताओं का आलोचनात्मक विवेचन-विश्लेषण इस इकाई में किया गया है। इनकी योजना से जहाँ एक ओर पंत के काव्य में प्रभावोत्पादकता बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर दुरूहता का दोष भी समाविष्ट हुआ है। प्रतीकों के संबंध में इस तथ्य की जानकारी आपके लिए उपयोगी हो सकती है।

प्रस्तुत इकाई के अंत में पंत द्वारा प्रंयुक्त काव्य-रूप और इनकी छंद विधान संबंधी विशेषताओं पर भी विचार किया गया है। इस प्रक्रिया में कवि के प्रगीत काव्य संबंधी विशेषताओं के साथ ही प्रबंधात्मक रचनाओं, विशेषतः काव्य-रूपकों की विशेषताओं को भी उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। प्रबंधात्मकता की दृष्टि से पंत का 'लोकायतन' विशेष उल्लेखनीय है। 'कामायनी' के बाद 'लोकायतन' छायावादी काव्य धारा का दूसरा महाकाव्य है। अतः इसकी रचना शिल्प संबंधी विशेषताओं को विशेष रूप से उद्‌घाटित किया गया है। शैली की दृष्टि से छंद-विधान का भी अपना विशेष महत्व है। निराला और प्रसाद की भाँति पंत ने भी इस दृष्टि से कुछ नये प्रयोग किए हैं। पंत ने परांपरागत मात्रिक छंदों में अपेक्षित परिवर्तन, कहीं दो बंदों के मिश्रण और कहीं नवीन छंद योजना द्वारा अपने कौशल का परिचय दिया है। आवश्यकता के अनुकूल इन्होंने तुकांत और अतुकांत दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है। निराला के प्रभाव या उनकी प्रतिद्वंद्विता के वशीभूत पंत ने 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'अतिभा' आदि संग्रहों की कुछ कविताओं में मुक्त छंद का भी प्रयोग किया है। 'कला और बूढ़ा चाँद' की अधिकांश कविताएँ मुक्त छंद में लिखी गयी हैं। छंद प्रयोग, विशेषतः मुक्त छंद-योजना की दृष्टि से पंत पर समुचित विचार के लिए निराला से इनकी तुलना भी की गयी है। फलस्वरूप पंत की छंद प्रयोग संबंधी उपलब्धियों के साथ इनकी त्रुटियों को उजागर करने का प्रयास भी इस इकाई में किया गया है। इससे आपको निराला की मुक्त छंद संबंधी अवधारणा और उसके महत्व को समझने में सहायता मिलेगी और पंत के छंद-प्रयोग का आलोचनात्मक निरीक्षण-परीक्षण भी आप आसानी से कर सकेंगे।

12.6 प्रश्न

1. पंत की काव्य-भाषा से संबंधित विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
2. सम्मूर्तन विधान की दृष्टि से पंत की अप्रस्तुत योजना के महत्व को उद्‌घाटित करें।
3. बिम्ब-योजना की दृष्टि से पंत के काव्य की विशेषताओं को स्पष्ट करें।
4. पंत के काव्य में छंद विधान के महत्व पर प्रकाश डालें।
5. शब्द शिल्पी के रूप में पंत के महत्व को रेखांकित करें।

इकाई 13 दिनकर के काव्य की अंतर्धाराएँ

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 दिनकर का युग
13.3 दिनकर की राष्ट्रीय चेतना
13.4 सौंदर्य और प्रेम भावना
13.5 दिनकर की काव्य दृष्टि का विकास
13.6 सारांश
13.7 प्रश्न

13.0 उद्देश्य

रामधारी सिंह दिनकर पर आधारित इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- परवर्ती छायावादी काव्य युग से परिचित हो सकेंगे
- इस युग के प्रतिनिधि कवि दिनकर की राष्ट्रीय चेतना उनके काव्य में किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है, इस को समझ सकेंगे
- राष्ट्रीय चेतना के अलावा दिनकर के काव्य में सौंदर्य और प्रेम की जो धारा है और 'उर्वशी' जिस धारा की मुखरतम अभिव्यक्ति है, उसकी मुख्य विशेषताओं को जान सकेंगे
- दिनकर के साहित्य और कला के बारे में क्या विचार हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में उन की काव्य दृष्टि के विकास को रेखांकित कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के आधुनिक काल वाले खंड में कविता की नई धारा के तृतीय उत्थान का उल्लेख करते हुए खड़ी बोली की तीन मुख्य धाराओं को चिन्हित किया है - "द्विवेदी काल की क्रमशः विस्तृत और परिष्कृत होती हुई धारा, छायावाद कही जानेवाली धारा तथा स्वाभाविक स्वच्छंदता को लेकर चलती हुई धारा जिसके अंतर्गत राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन की लालसा व्यक्त करने वाली शाखा भी हम ले सकते हैं।" उन्होंने यह भी ठीक लिखा है कि "जबकि धाराएँ साथ-साथ चल रही हैं तब उनका थोड़ा बहुत प्रभाव एक दूसरे पर पड़ेगा ही।"

रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मज्ञों ने ठीक ही दिनकर जी का संबंध छायावादी धारा से नहीं जोड़ा। 'स्वछंद धारा ' के अंतर्गत उन्हें रखा। दरअसल दिनकर जी ने जब लिखना शुरू किया तो छायावाद रूप ग्रहण कर चुका था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 1930 ई. तक छायावादी रचनाओं ने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। "इसी समय तीन और शक्तिशाली कवियों का प्रवेश हुआ। ये हैं -- भगवती चरण वर्मा, 'बच्चन' और दिनकर'।" पहले दो कवियों के स्वभाव में मस्ती, उल्लास और अपने प्रति दृढ़ विश्वास को प्रधान तत्वों के रूप में उन्होंने चिन्हित किया है। दिनकर जी के बारे में लिखते समय वे सिर्फ मस्ती को उनकी विशेषता नहीं बताते। वे लिखते हैं, "कल्पना की ऊँची उड़ान, विषम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के कारण 'दिनकर' प्रथम दो कवियों से एकदम भिन्न श्रेणी के कवि हैं। 'दिनकर' की उमंग और मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है।" कवि की विशेषता बताते हुए वे लिखते हैं, "उसका मन व्यक्त रूप में मस्ती और मौज का उपासक है, शहर की चिंता में दुबले होने वालों से अलग रहना पसंद करता है। किंतु उसके भीतर अव्यक्त और अलक्षित रूप से सामाजिक चेतना का वेग है। .....इन विविध वृत्तियों के संघर्ष से 'दिनकर' के काव्य में वह प्रवाह उत्पन्न हुआ है जो अन्य कवियों में नहीं मिलता।" वे आगे लिखते हैं, "दिनकर अपने ढंग के अकेले हिंदी कवि हैं। यौवन और जीवन उन्हें आकृष्ट करते हैं, सौंदर्य का मोहन संगीत उन्हें मुग्ध करता है, पर वे इनसे अभिभूत नहीं होते। उल्लास और उमंग सच्चे अर्थों में मानवता की मुक्ति से ही संभव है। जब छायावाद के प्रथम उन्मेष के कवियों के बाद दूसरे उन्मेष के कवि आए, तो उनके सामने मानवतावाद का आदर्श अस्पष्ट रह गया था। 'दिनकर' में वह आदर्श पूरे ज़ोर पर है।" आपने

ध्यान दिया होगा कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दिनकर जी की विशेषताओं की व्याख्या करते समय उन्हें छायावाद के दूसरे उन्मेष का कवि कहा है। इससे ऐसा लगता है कि यह छायावाद का परवर्तीकाल है। तो क्या दिनकर जी की कविताएँ छायावादी कविताओं का बढ़ाव मात्र हैं?

13.2 दिनकर का युग

दिनकर जी ने जिस युग में लिखना शुरू किया था, उसके बारे में विचार करना ज़रूरी है। वह समय कैसा था? अंग्रेज़ों की गुलामी खत्म करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा संघर्ष नए धरातल पर पहुंच गया था। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य की घोषणा की थी। सविनय अवज्ञा आंदोलन ने पूरे देश को झकझोर दिया था। इसके साथ ही और भी घटनाएं थी जो संपूर्ण देश के मानस को आंदोलित कर रहीं थीं - आंदोलन की वापसी, गांधी-इरविन समझौता, मेरठ षड़यंत्र और भगत सिंह तथा उनके साथियों को फांसी। एक तरफ जहाँ महात्मा गांधी सर्वमान्य नेता बन चुके थे, वहीं दूसरी तरफ स्वाधीनता-आंदोलन में युवा शक्ति अपने ढंग से हस्तक्षेप कर रही थी। यही समय था जब भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई और पढ़े लिखे लोगों के बीच साम्यवादी विचार लोकप्रिय होने लगे। किसान-सभा की स्थापना और ठीक उसके समानांतर प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना जैसी महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बोल्शेविक क्रांति की घटना एकदम ताज़ा थी और समाजवादी सोवियत संघ नई आशा बनकर उभरा था। बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक का यह कालखंड अत्यंत घटनापूर्ण था। इसमें एक ओर जहाँ मानवता की मुक्ति के लिए आशाजनक संकेत मिल रहे थे और दिशाएं खुलती दिखलाई पड़ रहीं थीं, वहीं दूसरी ओर फासिज्म जन्म ले रहा था और द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी भी चल रही थी।

यह किनारे बैठने का समय न था। कवि को सौंदर्य का उपासक समझा जाता है। वह सौंदर्य का सृजन भी करता है। पर इस दौर का सजग कवि अपनी भूमिका में और भी सक्रियता चाहता था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काल में भारतीय स्वीधानता आंदोलन में युवावर्ग के प्रवेश को चिन्हित किया है। वे लिखते हैं, 'देश के युवकों में कभी भी आत्मविश्वास की मात्रा उतनी नहीं थी जितनी इस काल में रही। धीरे-धीरे व्यक्ति मानव के स्थान पर समाज-मानव का महत्व प्रतिष्ठित होता गया। यह काल एक ओर सामूहिक आंदोलन में विश्वास करता है और दूसरी ओर सामाजिक अभ्युत्थान के प्रति आकृष्ट होने का समय है।' जैसा पहले द्विवेदी जी के हवाले से ही कहा गया है, संभवतः इसी युवा शक्ति के असर से इस युग के मिजाज में मस्ती और फक्कड़पन मिलता है। इस मस्ती और फक्कड़पन का क्या मतलब है? कुछ एक विद्वान इसका स्रोत खोजते हुए वासना और योग तक जाते हैं और कुछ अतृप्त यौन इच्छाओं तक। एक आलोचक ने सही लिखा है कि 'माखनलाल' और 'नवीन' के काव्य का अनुशीलन करने से जो तथ्य उभर कर सामने आता है, वह यह है कि उनकी मस्ती उनकी उत्सर्ग-भावना की देन थी। वे चूंकि स्वाधीनता आंदोलन के उस दौर के कवि थे, जो धीरे-धीरे काफी उग्र हो चुका था, इसलिए उनमें पहले के राष्ट्रीयतावादी कवियों की तुलना में एक बलिदान का भाव है। यही भाव दिनकर में आकर बहुत बढ़ जाता है।' दिनकर जी के समानधर्मा कवि बच्चन ने इस संबंध में लिखा है : 'प्रकृति-प्रेमी पंत की भाषा विशिष्टता संपन्न होकर भी संघर्ष की भाषा नहीं थी, और न ही रहस्यवादी महादेवी की भाषा। राष्ट्रवादियों के स्वर की प्रखरता सतही थी। गहराई आगे चलकर पहले माखनलाल चतुर्वेदी ने और बाद में 'दिनकर' ने दी।'

द्विवेदीजी ने इस काल की विशेषता बताई है - व्यक्ति-मानव की जगह समाज-मानव की प्रतिष्ठा। बच्चन ने अपने जैसे कवियों का अभीष्ट बताया है - संघर्ष की भाषा, व्यक्ति और समाज के संघर्ष की भाषा बोलने का प्रयत्न। लेकिन ऐसे भी आलोचक हैं जो इस दौर की व्याख्या अलग ढंग से करते हैं। डॉ. नामवर सिंह को अपनी पुस्तक 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' में सहज अक्खड़ता-फक्कड़ता से मिली जुली रूमानियत से भरे इस दौर के काव्य पर अलग से विचार करना संभव नहीं लगा, जबकि वे छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों पर विचार करते हैं। दरअसल फक्कड़पन और मस्ती तथा जवानी की इस अभिव्यक्ति को आलोचकों ने गंभीरता से ग्रहण ही नहीं किया। नामवरजी ने फासिज्म के उदय, म्युनिख-समझौते, राष्ट्रीय पैमाने पर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के निर्माण और पतन के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन में शिथिलता और नए वामपंथी दलों के बढ़ते असंतोष की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है कि इस पृष्ठभूमि में एक प्रकार की अशांति, घुटन, कुंठा, कशमकश, निरूपायता आदि का अनुभव किया जा रहा था। राजनीतिक स्तर पर नेहरु जैसे बुद्धिवादी इसे महसूस कर रहे थे। यही समय छायावाद के नैतिक विजन के टूटने का समय भी है। नामवरजी कहते हैं कि इसके कारण हृदय और बुद्धि के अलगाव के रूप में मन का विभाजन हुआ और उसके कारण एक

रिक्तता और संकट पैदा हुआ। उनके मुताबिक 'काव्य के स्तर पर इस 'संकट' से उबरने के दो ही रास्ते थे: या तो इस संकट को गंभीरता से स्वीकार कर समूचे द्वंद्व को पूरी नाटकीयता के साथ काव्य-रूप दिया जाए या फिर इस संकट को 'संकट' के रूप में मानने से एकदम इंकार किया जाए। बौद्धिक युवा कवि पहला रास्ता चुनें, इससे पहले बच्चन आदि उत्तरछायावादी कवि दूसरा रास्ता अपना चुके थे। बुद्धि और सत्य के बीच की दरार को उन्होंने एक सहज सत्य के रूप में स्वीकार करके बुद्धि से एकदम कुट्टी कर ली, क्योंकि उनके लेखे सारे खुराफातों की जड़ बुद्धि ही थी। बुद्धि के बहिष्कार के बाद संभवतः कवि का काम आसान हो गया। छायावादी दार्शनिक गंभीरता की जगह फक्कड़ाना अंदाज़ ने ले ली। इस मस्ती के आलम में सारी समस्याएँ अपने-आप हवा हो गयीं। इस सरलता का लोकप्रिय होना स्वाभाविक था।' इसलिए जैसा विजयदेव नारायण साही का विचार है, 'समस्या यही थी कि तीसरे दशक के काव्य में जो अनिवार्य अगंभीरता थी, उससे मनोभूमि को फिर किस प्रकार गंभीरता की ओर वापस लाया जाए।'

13.3 दिनकर की राष्ट्रीय चेतना

जैसा शुरू में ही कहा गया, मैथिलीशरण गुप्त के बाद दिनकर जी को ही राष्ट्रकवि कहकर पुकारा गया। उन्होंने आज़ादी के आंदोलन के दौरान लिखना शुरू किया था और अपने चारों ओर की स्थितियाँ उन पर जबर्दस्त असर डाल रही थीं। अपनी चुनी हुई कविताओं के संकलन 'चक्रवाल' में उन्होंने लिखा है, 'मैं....वैसा कवि अवश्य बनना चाहता था, जिसकी प्रेरणा उसके सामाजिक कर्तव्य-ज्ञान से आती है, किंतु, विप्लव और राष्ट्रीयता का वरण मेरा उद्देश्य न था।' बारदोली सत्याग्रह के दौरान उनका पहला लघु गीत-संग्रह 'बारदोली विजय' प्रकाशित हुआ, जिसमें राष्ट्रीयता के गीत थे। फिर भी उनके अनुसार उनके पहले खंड-काव्य (प्रण-भंग) को देखकर कोई 'यह नहीं कह सकता था कि राष्ट्रीयता मेरी कविताओं का प्रधान गुण है।' फिर क्यों उन्हें राष्ट्रीयता की भावनाओं को व्यक्त करने वाला सबसे सशक्त कवि माना गया? 1939-1940 ई0 के दौरान उनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुईं 'रसवंती', 'द्वन्द्व -गीत' और 'हुंकार'। वे बताते हैं कि हुंकार के प्रकाशन से उन्हें यश मिला, जिसमें राष्ट्रीयता के भावों की ज़ोरदार अभिव्यक्ति थी। इसके बारे में वे स्पष्ट करते हैं : 'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया।...अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज़ आती, फाँसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज़ सुनाई देती जो गाँधीजी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्र नायकों के हृदय में चल रही थी, जिनसे बढ़कर मैं किसी और को श्रद्धेय नहीं समझता था। मेरी समझ में उस समय सारे देश में एक स्थिति थी जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी, सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वतंत्रता संग्राम को सबल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मज़बूरियों से बेचैन थी।' यह वह समय था जब 'सामूहिक अनुभूतियों का साम्राज्य छा जाता है। प्रसाद, निराला, पंत जैसे अपने वरिष्ठ समकालीनों की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं, 'वे फिर भी संयमशील रहे, किंतु, मुझ जैसे लोग राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी भावनाओं के प्रवाह में बह गए।' खड़ी बोली हिंदी-कविता की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता थी - ऐसा कहना अनुचित न होगा। दिनकर जी ने जिन कवियों को अपने गुरू के रूप में याद किया है - वे भी राष्ट्रीय भावनाओं के निर्भीक गायक थे। यह समझना भी ज़रूरी है कि उस समय राष्ट्रीय भावना क्रांतिकारी भावना थी उसमें गांधीवाद, समाजवाद या फिर सशस्त्र क्रांति के जरिए आज़ादी की राह खोजने वाले सब शामिल थे। अगर हम बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में लिखी गई ऐसी कविताओं को पढ़ें तो देखेंगे कि उनमें एक सशक्त, भयविहीन भारत की कल्पना की गई है। भारत की पाँच हज़ार साल पुरानी, लंबी संस्कृति की स्मृति भी उन कविताओं में है। अंग्रेज़ों के क्रूर शासन से मुक्ति के लिए भारतीय जनता उठ खड़ी हो इसके लिए ज़रूरी था कि वह उस हीनभाव से उबरे जो ब्रिटिश हुकूमत ने उसके अंदर कूट-कूट कर भर दिया था। आश्चर्य नहीं कि स्वामी विवेकानंद युवकों के बीच काफी लोकप्रिय हुए। यह इसलिए कि उन्होंने मात्र धर्म-प्रचार नहीं किया, भय से मुक्ति का आह्वान ही उनके समूचे अभियान का मूल था। उसी तरह गांधी जी ने अहिंसा का जो राजनीतिक अस्त्र निकाला, उसके जरिए उन्होंने साधारण भारतीय को यह अहसास कराया कि उसे ब्रिटिश हुकूमत से लड़ने के लिए अलग से किसी शारीरिक बल की या हथियारों की मदद की ज़रूरत नहीं है। एक भय मुक्त मानव मज़बूत से मज़बूत शासन के लिए कितना खतरनाक हो सकता है — गांधी जी को देखकर भारत की जनता ने इस बात को समझा। गांधी जी ने यह भी दिखलाया कि अपने देश या राष्ट्र की मुक्ति या भलाई का मतलब दूसरे देश या राष्ट्र का अहित करना नहीं है। इस तरह राष्ट्रीयता की जिस भावना का संचार गांधी जी के द्वारा हुआ, उसमें दूसरों के मुकाबले अपनी श्रेष्ठता का अहंकार न था, आक्रामकता न थी बल्कि समानता के व्यवहार का कोमल नियंत्रण था।

राष्ट्रीयता अपने आप में एक उदात्त भावना है, लेकिन जब वह अहंकार और श्रेष्ठत्व के भाव से मुक्त हो जाए तो विश्व बंधुत्व की उच्चता प्राप्त कर लेती है। सौभाग्य से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन्मी राष्ट्रीयता की भावना में ये गुण थे।

दिनकर जी की राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कविताएँ इसी भाव से युक्त हैं। वे लिखते हैं कि कवि होने की सामर्थ्य 'मुझमें भारतवर्ष का ध्यान करने से जाग्रत हुई, यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता की आकुलता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई।' दिनकर जी के पहले से कविता लिख रहे कवि भी इस आकुलता को स्वर दे रहे थे। माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे कवि तो राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भी थे। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के लक्ष्यों के प्रति उनकी गहरी उत्सर्ग-भावना पाठकों को आंदोलित करती थी। माखनलाल जी ने एक कविता में लिखा - 'होता हूँ कुर्बान, बताओ / किस कीमत पर लोगे जान?' नवीन जी के शब्द हैं - 'हम संक्रांतिकाल के प्राणी, बदा नहीं सुखभोग / घर उजाड़कर जेल बसानें का है हमको रोग।' आंदोलन में सीधे शामिल होने से इनकी कविताओं का एक अलग ही तेवर है। दिनकर जी इनकी तरह आंदोलन में न थे। वे सरकारी नौकरी में थे। इसके चलते उन्हें भी ऐसा लगता रहा मानो 'मेरी राष्ट्रीय कविताओं और मेरे जीवन के बीच एक प्रकार की भिन्नता रही है जो उस व्यक्ति के चारित्रिक विरोधाभास का प्रतीक है जो कहता कुछ है तथा करता कुछ और है।' 'रेणुका' और 'हुंकार' की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर अत्यंत प्रखर है। प्राय: इन कविताओं में आह्वान, उद्‌बोधन, पुकार, बुलाव — ये सब देखने को मिलते हैं। 'मंगल-आह्वान' की ये पंक्तियां देखिए

गत विभूति, भावी की आशा
ले युगधर्म पुकार उठे,
सिंहों की घन-अन्ध गुहा में
जागृति की हुंकार उठे।
जिनका लुटा सुहाग, हृदय में
उनके दारूण हूक उठे,
चीखूँ यों कि याद कर ऋतुपति
की कोयल रो कूक उठे।

आगे की पंक्तियाँ हैं :

प्रियदर्शन इतिहास कंठ में
आज ध्वनित हो काव्य बने
वर्तमान की चित्र पटी पर
भूतकाल संभाव्य बने।

इन पंक्तियों में 'गत विभूति' की स्मृति ध्यान देने योग्य है और यह इच्छा भी कि वर्तमान में बीते हुए समय को फिर से संभव किया जा सके। अतीत को गौरवपूर्ण समझने की यह प्रवृत्ति आम थी। दिनकर जी भी इससे मुक्त न थे। लेकिन इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि कवि भारत की सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करने की कोशिश में लगा हुआ था। उसके लिए तो 'विशाल भारतीय जनता की अनुभूतियाँ' दरअसल 'भारत के पाँच सहस्त्र वर्ष प्राचीन उस गौरवपूर्ण इतिहास की अनुभूतियाँ थीं जो सौभाग्यवश, हमारे ही काल में आकर फिर से जीना चाह रहा था।' भारतीय जनता के हृदय में जो सांस्कृतिक छवियाँ भारतीयता के प्रतीक-रूप में बसी हुईं थीं, वे ही काव्यात्मक अनुभूतियों का सृजन कर सकती थीं। इनमें धार्मिक चरित्र भी शामिल थे। पर उन धार्मिक प्रतीकों का बीसवीं सदी के कवियों ने दूसरे धर्मों से तुलना करने के लिए उपयोग नहीं किया। वे जनता के मन में जिस उदात्त भावना का संचार कर सकते थे, उस तक पहुंचना ही कवि का लक्ष्य था। इसलिए शंकर का तांडव करता रूप अधिक आकर्षित करता है। तांडव का आह्वान इसलिए कि :

प्रभु! तब पावन नील गगन-तल,
विदलित अमित निरीह-निबल-दल,
मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र-जन,
आह! सभ्यता आज कर रही
असहायों का शोणित-शोषण।

अंग्रेज़ भारत जैसे देशों को गुलाम बनाने के अपने घृणित कृत्य को यह कहकर उचित ठहराते थे कि वे अधिक सभ्य हैं, इसलिए असभ्यों पर शासन करने का उनका सहज अधिकार है। दिनकर इसे अस्वीकार करते हैं :

गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो,
लगे आग इस आडम्बर में,
वैभव के उच्चाभिमान में,
अहंकार के उच्च शिखर में,
स्वामिन्, अंधड़ आग बुला दो
जले पाप जग का क्षण-भर में।

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट है कि दिनकर जी की राष्ट्रीयता की चेतना में एक समतावादी सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि लगातार सक्रिय है। 'दरिद्र-जन', 'निरीह-निर्बल-दल' के प्रति पक्षधरता का स्वर यहाँ तीव्र है। यह भी देखना चाहिए कि तांडव के शंकर सिर्फ हिंदुओं के शंकर नहीं हैं, वे अधिसंख्य भारतीय जन के मन में बसे हुए विध्वंस के देवता हैं, अन्याय देखकर ही जिनका तीसरा नेत्र खुल पड़ता है। जिस तरह शंकर, उसी तरह हिमालय, गंगा, बुद्धदेव भी नई राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक चेतना के वाहक के रूप में सामने आते हैं।

'हिमालय' दिनकर जी की अत्यंत प्रसिद्ध कविता है। इसमें भी भारतीयों के मन में बसे हुए गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति है। हिमालय जैसे विशाल भारतीय जन-मानस का एक उदात्त प्रतीक बन जाता है, जो मौन त्याग कर चेतना हो जाए तो अन्याय की कड़ियाँ टूट जाएँगी। उसी प्रकार बुद्धदेव भी एक क्रांतिकारी के रूप में याद किए जाते हैं। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन विदेशी शासन से मुक्ति के लिए तो था ही, वह स्वंय भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को नष्ट करने का विराट समाज-सुधार का आंदोलन था। जाति-प्रथा के कारण भारतीय समाज में जो जड़ता आ गई थी, उसे नष्ट करना एक प्रमुख कर्तव्य था। छुआछूत के विरूद्ध गांधी जी ने ज़ोरदार आवाज़ उठाई। जिन्हें अछूत माना जाता था, उन्हें हरिजन की उपाधि दी। मंदिरों के दरवाज़े उनके लिए बंद थे। गांधी जी ने हरिजनों के सामाजिक-सम्मान को हासिल करने के क्रम में मंदिर-प्रवेश का आंदोलन चलाया। इसी क्रम में हिंदुओं के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल वैद्यनाथ धाम (देवघर) में मंदिर-प्रवेश के प्रयास के दौरान पंडों ने उन पर हमला किया। दिनकर जी इस घटना से क्षुब्ध हो उठे :

आह! सभ्यता के प्रांगण में आज गरल-वर्षण कैसा!
घृझा सिखा निर्वाण दिलानेवाला यह दर्शन-कैसा।
स्मृतियों का अंधेर! शास्त्र का दम्भ! तर्क का छल कैसा।
दीन-दुखी असहाय जनों पर अत्याचार प्रबल कैसा!

व्याकुलता से भरा हुआ यह स्वर आगे और तीखा हो जाता है :

मनुज-मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए,
कैसे बचें दीन? प्रभु भी धनियों के गृह में बंद हुए।
अनाचार की तीव्र आँच में अपमानित अकुलाते हैं,
जागो बोधिसत्व! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं।

वे बुद्ध को 'विप्लव के वाक्' और 'अतीत के क्रांति-गान' कहकर संबोधित करते हैं। इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है कि यहाँ राष्ट्रीयता की भावना में आधुनिक चेतना का साग्रह प्रवेश है। भारतीय समाज की जड़ता को स्वीकार नहीं किया गया है। इसके साथ ही, दिनकर जी की राष्ट्रीय चेतना का एक दृढ़ आधार है - सामाजिक साम्य के प्रति उनका आग्रह। 'कविता की पुकार' शीर्षक रचना में कवि की इच्छा है :

विद्युत छोड़ दीप साजूँगी, महल छोड़ तृण-कुटी-प्रवेश,
तुम गाँवों के बनो भिखारी, मैं भिखारिणी का लूँ वेश।

आगे की पंक्तियाँ भी ध्यान से पढ़ने योग्य हैं :

शस्य-श्यामला निरख करेगा। कृषक अधिक जब अभिलाषा।
तब मैं उसके हृदय-स्त्रोत में उमड़ूँगी बन कर आशा।

एक तरह से यह कविता दिनकर का घोषणा पत्र भी है। यहाँ कविता का उद्देश्य साधारण जन-जीवन को अभिव्यक्त करना तो है ही, दमित-दलित मनुष्यों के जीवन में आशा की किरण जगाना भी है। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना को सामान्य जन-जीवन की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित करने का काम दूसरे कवियों के साथ दिनकर जी भी कर रहे थे। इसी वजह से हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने उनके बारे में लिखा है : "वे छायावादियों और प्रगतिवादियों के बीच की कड़ी हैं - कम छायावादी, अधिक प्रगतिवादी।" इस पर हम थोड़ा आगे जाकर विचार करेंगे कि वे खुद को प्रगतिवादी मानते हैं या नहीं। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रगतिवादियों का जो सामाजिक आदर्श था, वही दिनकर जी का भी था। वे अपनी कविता को 'क्रांति-धात्रि कविते!' कहकर संबोधित करते हैं :

"उठ भूषण की भाव-रंगिणी ! लेनिन के दिल की चिनगारी!
युग-मर्दित जीवन की ज्वाला। जाग-जाग, री क्रांति-कुमारी!
लाखों क्रौच कराह रहे हैं, जाग, आदि-कवि की कल्याणी।
फूट-फूट तू कवि-कंठों से बन व्यापक निज युग की वाणी।

1917 में रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति ने पूरी दुनिया को झकझोर दिया था। भगत सिंह जैसे बलिदानियों ने भी मार्क्स और लेनिन के विचारों के प्रति आकर्षण दिखलाया था। यों देखें तो भारतीय साम्यवादियों और राष्ट्रीय आंदोलन में लगे हुए भिन्न विचारधाराओं के लक्ष्य में मौलिक अंतर नहीं दिखलाई देता है, पर अनेक बार ऐसे अवसर आते थे जब भारतीय साम्यवादी अंतर्राष्ट्रीयता के नाम पर राष्ट्रीय हितों को पीछे करने को उद्यत रहते थे। एक स्तर पर यह विवाद भी चलता था कि पहले राष्ट्रीय स्वाधीनता या साम्यवादी क्रांति और स्वाधीनता साथ-साथ? क्रांति के स्वरूप को लेकर भी बहस चला करती थी। रिवोल्यूशनी सोशलिस्ट पार्टी के नेता सुशील भट्टाचार्य ने एक पत्रिका को दिए इंटरव्यू में बताया है : 1928 में तीसरे इंटरनेशनल ने तय किया कि यह सर्वहारा क्रांति का वक्त है। गांधी जी को साम्राज्यवादी एजेंट समझा जाता था और कम्युनिस्ट सविनय अवज्ञा आंदोलन के विरूद्ध थे। बोर्जुआजी साम्राज्यवाद के खिलाफ भूमिका निभा रही थी और जनता उनके साथ थी, फिर हम कैसे उनसे कटकर रह सकते थे? प्रत्येक महत्वपूर्ण घड़ी में कम्युनिस्टों ने ऐसे आंदोलनों का साथ नहीं दिया। सुशील भट्टाचार्य की इन बातों को देखें तो पता लगता है कि कम्युनिस्टों की देशभक्ति और राष्ट्र के प्रति उनके समर्पण पर शक न भी करें, तो भी उस समय अपनी प्राथमिकताओं को लेकर वे देश की जनाकांक्षा के साथ पूरी तरह जुड़े नहीं थे। कविता को 'लेनिन के दिल की चिनगारी' कहने वाले दिनकर जी ने 1945 में 'दिल्ली और मास्को' शीर्षक कविता में जैसे कम्युनिस्टों से बहस करते हुए, उन्हें अपनी प्राथमिकता दुरूस्त करने को कहा :

ओ समता के वीर सिपाही,
कहो, सामने कौन अड़ी है?
बल से दिए पहाड़ देश की
छाती पर यह कौन पड़ी है?

यह है परतंत्रता देश की
रूधिर देश का पीने वाली
मानवता कहता तू जिसको,
उसे चबाकर जीने वाली।
यह पहाड़ के नीचे पिसता
हुआ मनुज क्या प्रेम नहीं है?
इसका मुक्ति-प्रयास स्वंय ही
क्या, उज्ज्वलतम श्रेय नहीं है?

उनके सामने यह बात एकदम साफ थी कि भारत की स्वाधीनता से ही यहाँ के करोड़ों शोषितों की मुक्ति का मार्ग खुल सकता है :

दिल्ली के नीचे मर्दित अभियान नहीं केवल है,
दबा हुआ शत-लक्ष नरों का अन्न-वस्त्र, धन-बल है।
दबी हुई इसके नीचे भारत की लाल भवानी,
जो तोड़े यह दुर्ग, वही है समता का अभियानी।

दिनकर जी की राष्ट्रवादिता अंधी नहीं, वह गहराई से मानव-मुक्ति के मूल्य से जुड़ी है। ऊपर जिन कविताओं का उल्लेख है, उनके बहुत बाद, आज़ादी के बाद 1963 में लिखी अपनी कविता 'किसको नमन करूँ ?' में वे भारतीय राष्ट्र की कल्पना करते हुए उसे अत्यंत विस्तृत भावना में बदल देते हैं :

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहाँ एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।

किसी कवि की राष्ट्रवादिता या देशभक्ति अंततः ऐसी ही हो सकती है। दिनकर जी ने मात्र राष्ट्रवादी उद्घोष करने वाले पर देश प्रेम व्यंजक कविताएँ ही नहीं लिखीं, भारतीय राष्ट्र की सांस्कृतिक परंपरा की खोज करते हुए 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसा ग्रंथ भी लिखा। इसके चलते उनकी राष्ट्रवादी कविताओं में मात्र भावोच्छ्वास नहीं मिलता, उनमें, जैसा पहले ही कहा गया राष्ट्रवाद को मानव-मुक्ति के मूल्य से जोड़ने का उदात्त प्रयास मिलता है।

ऊपर हमने दिनकर जी की कविताओं के अंश पढ़े, उनसे स्पष्ट होता है कि उनका राष्ट्रवाद उन्माद फैलाने वाला न था। धार्मिक चरित्रों और कथाओं का प्रयोग उन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किया लेकिन कभी भी उनका भारत किसी एक धर्म से बँधा हुआ नहीं दिखलाई पड़ता है। चूंकि यह राष्ट्रवाद अंग्रेज़ों की गुलामी को खत्म करने वाले संग्राम के दौरान विकसित हुआ इसलिए इसमें एक खास तरह का लड़ाकूपन है। महात्मा गाँधी उस समय सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व थे। लेकिन कई बार युवाओं को उनके तौर-तरीकों से मतभेद होता था। दिनकर जी की कविताओं में इस युवा-मन की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है। स्वतंत्रता की कल्पना वे प्राय : एक बडी क्रांति के रूप में ही करते हैं जो अन्याय और असमानता पर आधारित राज्य और समाज का ध्वंस कर देगी। क्रांति की इस अवधारणा का भावनात्मक विस्फोट उनकी 'विपथगा' शीर्षक कविता में बड़े ओजस्वी ढंग से मिलता है। इस कविता में शुरू से अंत तक एक भयानक विनाश का नृत्य होता है :

पायल की पहली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है।
पड़ते जिस ओर चरण मेरे, भूगोल उधर दब जाता है।
लहराती लपट दिशाओं में, खलभल खगोल अकुलाता है।
परकटे बिहग-सा निरवलम्ब गिर स्वर्ग-नरक जल जाता है।
गिरते दहाड़कर शैल-श्रृंग मैं जिधर फेरती हूँ चितवन।

इस क्रांति का सामाजिक चरित्र आगे की पंक्तियों से एकदम साफ हो जाता है :

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।

युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार देता तब मुझको आमंत्रण।

जिस समय ये कविताएँ लिखी जा रही थीं, एक विवाद संघर्ष में हिंसा के प्रयोग को लेकर भी चल रहा था। 1941 से 1946 के बीच दिनकर जी ने अपना प्रसिद्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' लिखा। यह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय भी था। लेकिन जैसा स्वंय दिनकर जी ने स्पष्ट किया है, 'कुरुक्षेत्र' में विश्व-शांति की स्थापना की चिंता कम, अपने देशवासियों की विचार-दिशा बदलने की भावना ज्यादा है। यह इस विचार से प्रेरित था कि "अहिंसा अगर परम धर्म है, तो हिंसा को आपद् धर्म मानना ही पड़ेगा।" कवि के अनुसार कुरुक्षेत्र में महात्मा गांधी का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर करते हैं, किंतु जो नवयुवक उनके अहिंसा के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते, उनके प्रतीक भीष्म हैं। हिंसा और अहिंसा, युद्ध और शांति का द्वन्द्व इसमें महाभारत की कथा के सहारे व्यक्त किया गया है। भीष्म का यह प्रश्न दिनकर का भी प्रश्न है :

समर निन्द्य है धर्मराज, पर, कहो, शांति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी बनी हुई सरला है?

युद्ध, जिसमें हिंसा अनिवार्य है, तभी होता है जब अन्याय पर आधारित शांति न्याय की माँग को अस्वीकार कर देती है :

शांति खोलकर खड्ग क्रांति का जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का वह सर्जन करती है।
शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।

बाद की पंक्तियाँ हिंदी क्षेत्र में जितनी लोकप्रिय हुई हैं, उसी से पता चलता है कि साम्यवादी समाज की रचना से प्रेरित दिनकर जी - जैसे कवियों का राष्ट्रवाद कोरा चीत्कार-फूत्कार नहीं था। ऐसा नहीं है कि स्वाधीनता पाने के बाद उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखना बंद कर दिया। पर उनका प्रखर और क्रुद्ध राष्ट्रवादी स्वर जिस प्रकार 'परशुराम की प्रतीक्षा' में प्रकट हुआ, वैसा और कहीं नहीं। भारत पर चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया में लिखे गए इस वाक्य की हर पंक्ति में जैसे परशुराम के कुठार वाली धार है। इसमें भारत को किसी भी आक्रमण का उत्तर देने में सक्षम देखने की आकांक्षा फूटी पड़ती है। उसे एक बलवान राष्ट्र के रूप में विकसित होने का आह्वान किया गया है :

वे देश शांति के सबसे शत्रु प्रबल है,
जो बहुत बड़े होने पर भी दुर्बल हैं,
हैं जिनके उदर विशाल, बाँह छोटी है,
भोथरे दाँत, पर, जीभ बहुत मोटी है।
औरों के पाले जो अलज्ज पलते हैं,
अथवा शेरों पर लदे हुए चलते हैं।

दिनकर जी की इस प्रकार की कविताएँ अधिक लोकप्रिय हुईं - यह स्वाभाविक ही था। इनमें गर्जन-तर्जन है, ओजस्वी वक्तृता है, वेगवान छंद है। ऐसा लगता है मानो राष्ट्रीय भावना को कोई सशक्त प्रवक्ता मिल गया हो।

13.4 सौंदर्य और प्रेम भावना

पर दिनकर जी सिर्फ राष्ट्रवादी ही नहीं है। आरंभ से ही वे एक ही साथ अलग-अलग भावाधारित कविताएँ लिख रहे थे। जैसा पहले बताया गया है 'हुंकार', 'द्वन्द्वगीत' और 'रसवन्ती' - ये तीन संग्रह एक साल के भीतर प्रकाशित हुए। ज़ाहिर है कि उनकी कविताएँ एक ही साथ लिखी जा रहीं थीं। ऊपर जो कविताएँ उद्धृत की गईं हैं, उनको देखकर ही यह राय बना ली गई कि दिनकर जी जैसे कवियों में जोश बहुत है, बौद्धिकता कम है। दूसरा आरोप यह लगाया गया कि ये कविताएँ उपयोगितावादी हैं, इसलिए क्षणस्थायी हैं। चूँकि इनमें बात बड़े साफ़ तरीक़े से कही गई है, उसमें कहीं उलझाव नहीं है, इसी कारण इनमें कलात्मकता की कमी होने का भी आरोप लगा दिया गया। 'रश्मिलोक' की भूमिका में इन आरोपों की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है "ऐसे लांछन सर इकबाल पर भी लगाये गये थे और उत्तर में उन्होंने कहा भी था कि हाँ भाई, मैं कवि नहीं हूँ। मगर मेरे भीतर कुछ बातें हैं, जो कविता में कही जा सकती हैं। अतएव कविता का उपयोग मैं अपनी बातें कहने के लिए कर रहा हूँ।" जवाब देने के लिए तो उन्होंने इकबाल का सहारा लिया, पर अपने ऊपर लगने वाले आरोपों से वे व्याकुल भी रहते थे। उन्होंने लिखा है : "मैं भी चाहता था कि गर्जन-तर्जन छोड़कर मैं भी कोमल कविताओं की रचना करूँ, जिनमें फूल हों, सौरभ हो, रमणी का सुंदर मुख और प्रेमी पुरुष के हृदय का उद्वेग हो और ऐसी अनेक कविताएँ ... रेणुका, रसवन्ती और द्वन्द्वगीत में प्रकाशित हुईं।" हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "रसवन्ती में कवि .... सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होता है, परंतु उसके चित्त में शांति नहीं है।" गर्जन भरे स्वर में राष्ट्रीयता का गान करने वाले कवि का एक स्वर यह भी है, ध्यान से सुनने योग्य :

दो प्रेमी हैं यहाँ, एक जब
बड़े साँझ आल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है।
चोरी-चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है,
'हुई न क्यों' मैं कड़ी गीत की
विधना, यों मन में गुनती है।

वह गाता, पर किसी वेग से
फूल रहा इसका अंतर है।
गीत अगीत, कौन सुंदर है?

'कवि' शीर्षक रचना की ये पंक्तियाँ दिनकर जी के कवि-व्यक्तित्व के एक और पक्ष की ओर संकेत करती हैं :

कवि! तुम अनंग बनकर आये फूलों के मृदु शर-चाप लिये,
चिर-दुखी विश्व के लिए प्रेम का एक और संताप लिये।
सीखी-जगत ने जलन, प्रेम पर जब से कलि होना सीखा,
फूलों ने बाहर हँसी और भीतर-भीतर रोना सीखा।

'द्वन्द्व गीत', में सौंदर्य के प्रति आकर्षण और कर्तव्य की पुकार के बीच द्वंद्व मुखर हुआ है :

यात्री हूँ अति दूर देश का, पलभर यहाँ ठहर जाऊँ,
थका हुआ हूँ, सुंदरता के साथ बैठ मन बहलाऊँ,
'एक घूंट बस और' हाय रे, ममता छोड़ चलूँ कैसे?
दूर देश जाना है, लेकिन, यह सुख रोज़ कहां पाऊँ?

कविता क्या करे? क्या वह राष्ट्रवाद और स्वाधीनता का संदेशवहन करे या आनंद के भावों की अभिव्यक्ति करे? 'हुंकार' में संकलित कविता 'हाहाकार' में "उन कविताओं के प्रति ईष्या व्यक्त की है, जो धरती की हलचल से दूर हैं और रचयिता स्वप्न की मायापुरी में विहार कर रहे हैं।"

मेरी भी यह चाह विलासिनि
सुंदरता को सीस झुकाऊँ।
जिधर-जिधर मधुमयी बसी हो,
उधर वसन्तानिल बन जाऊँ

सौंदर्य और प्रेम की भावनाओं की यह अभिव्यक्ति दिनकर जी के मूल स्वभाव के अनुकूल थी। उन्होंने लिखा भी है कि आगे चलकर यही धारा 'उर्वशी' नामक उनके प्रसिद्ध काव्य में ज़ोरों से फूटी। 'उर्वशी' 1953 ई0 से 1961 ई0 के बीच लिखी गई। इस रचना के लिए इन्हें प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। कई लोगों को इसके प्रकाशन से झटका भी लगा क्योंकि सहज, कठिन स्वर में राष्ट्रीयता और साम्यवाद का गान करने वाला, 'विपथगा' जैसी कविता का रचयिता सौंदर्य, प्रेम और काम की अनुभूतियों को व्यक्त करे -- यह उनके लिए बड़ी लज्जा की बात थी। दिनकर जी की प्रचलित और स्वीकृत छवि के अनुरूप 'उर्वशी' काव्य न था। संभवत: उन्हें भी इसका अंदाज़ था। इसलिए जहाँ भी मौका मिला, उन्होंने स्पष्ट किया कि 'उर्वशी' के बीज उनकी बिलकुल आरंभिक कविताओं में भी मिल जाएँगे। 'उर्वशी' में भी 'कुरुक्षेत्र' की तरह एक मिथकीय आख्यान को लेकर उसकी पुनर्रचना की गई है। कथा में कोई बहुत फेर-बदल नहीं है। संक्षेप में मूल मिथकीय आख्यान को याद कर लेना उचित होगा : पुरूरवा चंद्रवंशी राजकुल का प्रवर्तक था। उर्वशी स्वर्गलोक की अप्सरा। मित्र और वरूण देवताओं के शाप के कारण उसे पृथ्वी पर उतरना पड़ा। पृथ्वी पर उतरते हुए उसे पुरूरवा ने देखा और उस पर आसक्त हो गया, बाद में उर्वशी भी उसके सौंदर्य तथा सच्चाई, भक्ति और उदारता जैसे गुणों के कारण उस पर मुग्ध हो गई। दोनों पति-पत्नी बन गए। बहुत दिनों तक सुख से रहने के बाद, एक पुत्र जन्म देकर उर्वशी स्वर्ग चली गई। पुरूरवा उसके वियोग में पागल सा हो गया। उर्वशी इससे प्रसन्न और द्रवित होकर फिर धरती पर लौटी और एक और पुत्र को जन्म दिया। इस तरह उनके पाँच पुत्र हुए। बार-बार वह स्वर्ग चली जाती थी। लेकिन पुरूरवा तो उसे जीवन संगिनी बनाना चाहता था। गंधर्वों के निर्देशानुसार उसने यज्ञ किया और उसका मनोरथ पूरा हुआ। प्रसिद्ध रचना ' विक्रमोर्वशीयम्' तथा ऋग्वेद के आधार पर 'शतपथ ब्राह्मण' में भिन्न-भिन्न रूप में यह कथा दी गई है।

दिनकर जी ने 'विक्रमोर्वशीयम्' और रवींद्रनाथ ठाकुर. की रचना 'उर्वशी' पढ़ी थी। मूलत: यह प्रेम और कामाकर्षण की कथा है। आगे चलकर श्री अरविन्द की उर्वशी पढ़ने पर उन्हें इसका एक आध्यात्मिक पक्ष भी दिखलाई पड़ा। इसी कारण 'उर्वशी' इनमें से किसी का भी दुहराव नहीं है। 'उर्वशी' में भी लगातार एक द्वन्द्व चलता रहता है। पुरूरवा पूछता है :

रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं, तो और क्या है?
स्नेह का सौंदर्य को उपहार
रस-चुंबन नहीं, तो और क्या है?

उर्वशी ' में पुरुष और स्त्री के बीच प्राकृतिक आकर्षण, काम-भावना के कारण उत्पन्न प्रेम और फिर इस प्रेम के विस्तार को मापने की कोशिश की गई है। इस संबंध में स्वंय कवि ने जो कुछ कहा है, वह हमारे लिए उपयोगी हो सकता है : 'उर्वशी की रचना का समय वह है जब ललित कला उपयोगी कला से बहुत दूर हो गई है। इसलिए आज संतानोत्पत्ति काम का ध्येय नहीं रहा। काम का उपयोगी पक्ष गौण, उसका ललित पक्ष ही प्रधान है।' काम का ललित पक्ष क्या है? प्रेम। फिर प्रेम क्या है? 'प्रेम संतानोत्पादन के साथ-साथ आनंद का उत्कर्ष भी है, वह शारीरिक होने के साथ-साथ रहस्यवादी अनुभूति भी है।' प्रेम का यह दूसरा पक्ष कवि को अपनी ओर खींचता है। उनके अनुसार 'एक आत्मा से दूसरी आत्मा का गहन संपर्क अध्यात्म की भूमिका बन सकता है, यह उर्वशी काव्य का गुणीभूत व्यंग्य है।'

'उर्वशी ' प्रेम-काव्य है या नहीं? यह प्रेम शारीरिक आकर्षण से आगे कहां तक जाता है? दिनकर जी स्पष्ट करते हैं, 'उर्वशी ... प्रेम की अतल गहराई का अनुसंधान करने के लिए लिखी गयी है। ... उर्वशी धर्म नहीं, प्रेम की अतीन्द्रियता का आख्यान है और यही आख्यान उसका आध्यात्मिक पक्ष है।' इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि उर्वशी में प्रेम के ऐंद्रिय पक्ष का निषेध किया गया है। पुरूरवा की उक्ति है :

फिर अधर-पुट खोजने लगते अधर को।
कामना छूकर त्वचा को फिर जगाती है।
रेंगने लगते सहस्त्रों साँप सोने के रूधिर में,
चेतना रस की लहर में डूब जाती है।

रूप के सौंदर्य, प्रेम और श्रृंगार की अनुभूतियों की खुली अभिव्यक्ति 'उर्वशी ' में मिलती है। 'उर्वशी ' के प्रकाशन के बाद इसे लेकर भारी साहित्यिक विवाद हुआ। इस विवाद में सारे महत्वपूर्ण लेखकों ने भाग लिया। भगवतशरण उपाध्ययजी ने 'उर्वशी ' की कड़ी आलोचना की : इसके कथा-स्रोतों की छानबीन करते हुए चोरी का माल सिद्ध किया, भाषा का मज़ाक उड़ाया और छंदों और असंगत बिंब-विधान आदि की चर्चा की। मुक्तिबोध को इसमें स्वाभाविकता की जगह शब्दजाल और आडंबर दिखलाई पड़ा। उनका आरोप है कि 'उर्वशी ' एक कृत्रिम मनोविज्ञान पर आधारित है। ऊपर हमने देखा है कि 'उर्वशी ' की रचना में लगे लंबे समय (1953-1961) में दिनकर जी किस द्वन्द्व से गुज़र रहे थे। इस द्वन्द्व को बिलकुल दूसरा रूप देते हुए मुक्तिबोध का मानना यह है कि दरअसल कवि 'कामात्मक मनोरति और संवेदनाओं में डूबना-उतराना चाहते हैं, साथ ही इस गतिविधि को सांस्कृतिक-आध्यात्मिक श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करना चाहते हैं।' यही कारण है कि जहाँ भारतभूषण अग्रवाल को 'उर्वशी ' में 'ओज का विलक्षण सम्मिश्रण' मिलता है, वहीं मुक्तिबोध का विचार है कि इसमें 'भाषा भी समारोहपूर्वक चलती है बृहत्त आयोजन के साथ; इसलिए उसकी प्रदीर्घ पंक्तियों में सांस्कृतिक ध्वनियों और प्रतिध्वनियों का निनाद है, और बहुत से स्थानों पर अर्थ की वायवीय शून्यताएँ हैं।' डॉ. नामवर सिंह ने इस पूरे विवाद में मुक्तिबोध की दिशा को ठीक बताया है। पर हमें 'उर्वशी ' पढ़ते हुए हमेशा ही दिनकर जी की उसके पहले की रचनाओं को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा करने पर हम पाते हैं कि दिनकर जी प्रत्येक घटना या मनोभाव अथवा अनुभूति के सांस्कृतिक पक्ष को हमेशा से ध्यान में रखते रहे हैं। वह जबर्दस्ती आरोपित नहीं है। दूसरे, उर्वशी के कवि पर यह आरोप असंगत और अन्यायपूर्ण है कि वह 'कामात्मक मनोरति ' में डूबना-उतरना चाहता है। 'उर्वशी ' की भाषा दिनकर जी के दीर्घ कवि-जीवन के दौरान विकसित हुई उनकी अपनी विशिष्ट काव्य-भाषा है, जिसके आधार पर उन्हें उनके समकालीन अन्य कवियों से अलग पहचाना जा सकता है।

13.5 दिनकर की काव्य दृष्टि का विकास

दिनकर जी की प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्तियों में छुई-मुई पन नहीं है। उनमें छायावादी कविता वाली नज़ाकत भी नहीं है। ऐसी कविताओं में भी वक्तृत्व गुण मिल जाता है। दरअसल उनके अंदर की बेचैनी और छटपटाहट ही उनकी काव्य-भाषा के स्वरूप को भी निर्धारित कर रही थी। हम लोग थोड़ा

आगे चलकर इस भाषा और शैली पर विचार करेंगे। उसके पहले यह देख लेना ज़रूरी है कि उनकी प्रदीर्घ काव्य-धारा क्या एक ही दिशा में प्रवाहित है या उसमें अंदर ही अंदर अनेक धाराएं हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और अन्य आलोचकों के हवाले से देखा जा सकता है कि दिनकर जी को 'समाज-व्यक्ति' का कवि मान लिया गया। यह मत भी जैसे सर्वमान्य हो गया कि वे 'वैयक्तिकता का प्रत्याख्यान' लेकर सामने आए। इसलिए स्वच्छंद धारा के होते हुए उनमें उस वैयक्तिक चेतना से अलगाव देखा गया जो रोमांटिक कविता की विशेषता हुआ करती है। दिक्कत यह है कि देशभक्ति, राष्ट्रीयता, साम्यवादी आदर्शों से प्रेरित उद्‌घोषणात्मक, ओजस्वी वक्तृता से पूर्ण कविताओं और गीतों के भीषण स्वर के पीछे दिनकर जी के निजी व्यक्तित्व की वेदना के स्वर को सुनने का धैर्य प्राय : नहीं दिखलाया गया है। 'रसवन्ती' नामक संग्रह में ही संकलित कविता 'शेष गान' में उनकी यह पीड़ा प्रकट हुई है :

इन गीतों में रश्मि अरूण है,
बाल ऊर्म्मि, दिनमान तरूण है,
बँधे अमित अपरूप रूप, गीतों में स्वंय समा न सका मैं।

आगे चलकर उनका अपना निजी स्वर और प्रखर होता है। 'युग का चारण' और 'वैतालिक' आदि कहकर इसे फिर भी नजरअंदाज किया गया, लेकिन 'हारे को नाम' में तो जैसे व्यक्ति दिनकर ही अपनी वेदना निवेदित करते मिलते हैं। उनकी इस वैयक्तिक चेतना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति को पहचानने से पहले यह जानना भी ज़रूरी है कि कविता और कला के बारे में उनके क्या विचार हैं। अपने एक निबंध में उन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी को उद्धृत किया है : "पिछले दो हज़ार वर्षों का भारतीय साहित्य कवि के व्यक्तित्व को खोता आया है। ...वैयक्तिकता की स्वाधीनता को छोड़कर वह 'टाइप' रचना की पराधीनता को स्वीकार करता आया है।" उनका मानना है कि इस पराधीनता को अस्वीकार करके अपने लिए नवीन राह बनाने की चेष्टा वैयक्तिक स्वाधीनता का परिणाम है। इसके साथ आगे चलकर उनका यह मत भी बना कि कविता या कोई भी कला उपयोगिता के संकीर्ण दायरे में बाँध कर नहीं रखी जा सकती। इस बात को लेकर भी, यानी कला की उपयोगिता और स्वतंत्रता के प्रश्न पर भी उनमें लगातार द्वंद्व चलता रहा है : "... जीवन भर मैं इस विचिकित्सा में पड़ा रहा हूँ कि कविता का वास्तविक प्रयोजन क्या है। वह मनुष्य को जगाने, सुधारने और उन्नत बनाने के लिए है या उसका काम आदमी को रिझाना और उसे प्रसन्न करना है?" आगे वे बताते हैं कि "मेरी दृढ धारणा है कि कविता व्यक्ति द्वारा सम्पादित सामाजिक कार्य है और शुद्ध कविता भी समाज के लिए ही लिखी जाती है।" कविता दरअसल मनुष्य के सौंदर्यबोध को समृद्ध करने का काम करती है। यह सौंदर्यबोध मनुष्य को इसके लिए प्रेरित कर सकता है कि वह अपने आस-पास के समाज को और सुंदर बनाए। लेकिन कई बार ऊपर से वह उपयोगी नहीं भी मालूम पड़ सकता है। इस संबंध में दिनकर जी का विचार है : "सौंदर्यबोध नैतिकता और उपयोग के वृत्त के भीतर हो सकता है और उसके बाहर भी जा सकता है। सौंदर्यबोधात्मक आनंद एक ऐसे संतोष की स्थिति है, जिसका कोई भी निश्चित लक्ष्य नहीं होता, जो एक प्रकार से तटस्थ और प्रयोजनहीन होता है। एमर्सन ने कहा था कि मैं सभी चीज़ों के भीतर हलचल मचा दूँगा, किंतु पक्ष मैं किसी का भी नहीं लूंगा।" दिनकर जी की कविता के बारे में ठीक यही बात नहीं कही जा सकती है। पक्ष वह लेती है, व्यक्ति की स्वाधीनता का, पीड़ित और दलित जनता का, वह विरोध में खड़ी होती है अत्याचार और शोषण के, विदेशी गुलामी के, पूंजीवाद के। लेकिन एकाधिक बार वे कविता की, बतौर कला, स्वतंत्र भूमिका पर ज़ोर देते भी पाए जाते हैं। 'स्वप्न और सत्य' नामक उनकी कविता को पढ़ने से मालूम होता है कि वे स्थूल उपयोगितावाद के दायरे से बाहर निकलकर कविता का आनंद उठाने की वकालत करते हैं :

तबीयत चाहती है, बात कुछ तुमको सुनाऊँ।
मगर, तुम कौन हो पंक्ति मेरी पढ़ रहे हो?
कला के पारखी हो? चाँदनी के चाहने वाले?
हवा की साँस में जो दर्द है, उसको समझते हो?
आगे की कुछ और पंक्तियाँ देखने लायक है :
बुलाते हैं इशारों से कभी वे स्वप्न तुमको भी,
हमारे हाथ से दो ईंच जो आगे बने रहते?

कविता को निष्प्रयोजन आनंद की इस अवस्था तक उठा ले जाना ही कवि का उद्देश्य लगता है। दिनकर जी की काव्य-दृष्टि, इस प्रकार, बहुत सरल नहीं है। वे यह ज़रूर कहते हैं कि "बड़ी कविता जो इस भूमि को सुंदर बनाती है" लेकिन बार-बार सुंदर बनाने के उसके अपने विशिष्ट ढंग को महत्व

ने पर ज़ोर देते हैं। यही कारण है कि हिंदी कविता के विकास पर लिखते समय वे ऐसे साहित्यिक आंदोलनों को तो महत्व देते हैं जिनके बारे में उन्हें यह संदेह नहीं है कि वे पूर्णतया साहित्यिक हैं, लेकिन 'प्रगतिवाद' जैसे महत्वपूर्ण साहित्यिक आंदोलन को वे साहित्यिकता से रहित मानकर उसे पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं दे पाते। 'हिंदी कविता पर अशक्तता का दोष' शीर्षक अपने निबंध में वे प्रगतिवादी आंदोलन के वैचारिक पक्ष से सहमति जतलाते हैं : 'हमारे समय में कविता का जो रूप निखर रहा है, वास्तविकता उसकी जान होगी। ... धरती पर एक नये प्रकार के मनुष्य का जन्म हो रहा है और हम लोग उसके युग के जीव हैं। ... हमारी आँखें उसी मनुष्य पर केंद्रित रहनी चाहिएँ।' सामाजिक आंदोलनों और बदलती राजनीति का कविता पर भी असर पड़ता है, उनके चलते उसकी विष्यवस्तु बदलती है, कहने का ढ़ंग भी बदल जाता है। इतना कुछ मानते हुए भी वे यह कहते हैं कि कवि या कलाकार को इसके लिए स्वतंत्र छोड़ा जाना चाहिए कि वह इन परिवर्तनों का स्वंय अनुभव करे और स्वंय ही यह तय भी करे कि उसे इनकी रोशनी में अपने लेखन को किधर लिए जाना है। वे स्वीकार करते हैं कि 'समय की सहानुभूति का प्रवाह सर्वहारा की ओर है और इस धारा के विपरीत तैरना कुछ-कुछ अप्राकृतिक-सा लगता है।' फिर भी उनकी दृढ़ मान्यता है कि यदि कवि को 'जानबूझकर ... आंदोलन, कानून और संघों के द्वारा किसी वाद विशेष की उपासना के लिए लाचार किया जाए तो यह उसके साथ और समग्र साहित्य के साथ सरासर अन्याय है।' दिनकर जी के काव्य विकास को अगर आप ध्यान से देखेंगे तो पाएँगे कि 1937 में संगठित रूप से प्रगतिवादी आंदोलन के शुरू होने के काफी पहले ही वे उन सामाजिक आदर्शों के प्रति आकर्षण व्यक्त कर रहे थे, जिनकी वकालत मार्क्सवादी या प्रगतिवादी करते थे। 'कविता की पुकार' में यह पक्षधरता बहुत स्पष्ट है :

विद्युत छोड़ दीप साजूँगी, महल छोड़ तृण-प्रवेश,
तुम गाँवों के बनो भिखारी, मैं भिखारिणी का लूँ वेश।

'दिल्ली' शीर्षक कविता में भी उनकी तड़प का कारण लुका-छिपा नहीं है :

हाय! छिनी भूखों की रोटी,
छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मज़दूरों के कौर छिने हैं,
जिन पर उनका लगा दसन है।
और
आहें उठीं दीन कृषकों की,
मज़दूरों की तड़प, पुकारें,
अरी! गरीबों के लोहू पर
खड़ी हुई तेरी दीवारें।

अपने इस स्वर के कारण ही दिनकर जी प्रगतिवादियों द्वारा बहुत सराहे गए। लेकिन जब 1939 में 'रसवंती' और 'द्वंद्वगीत' नामक उनके संग्रह प्रकाशित हुए, तो प्रगतिवादियों ने देखा कि इनमें तो भिन्न मनोदशाओं की कविताएँ हैं। इससे उनको गहरी निराशा हुई, '...मानों, कोई योद्धा तलवार फेंक कर केलि-कुंज में जा बैठा हो।' प्रगतिवादियों के ऐसे रवैये से दिनकर जी ने नतीजा निकाला कि उनकी दृष्टि साहित्यिक या कलात्मक नहीं है और वे राजनीतिक या दलवादी आग्रहों पर कविता को नापते जोखते हैं। संभवतः इसी कारण उन्होंने 'चक्रवाल' की भूमिका में प्रगतिवाद के बारे में बड़ी कड़ी राय व्यक्त की, 'प्रगतिवाद ...मुख्यतः, साहित्येतर आंदोलन था जो साहित्य के भीतर केवल राजनीतिक उपयोग के लिए साहित्यिकों का शोषण करने आया था।' फिर भी हिंदी कविता में प्रगतिवादी आंदोलन के सीमित योगदान को वे स्वीकार करते हैं, 'प्रगतिवाद का केवल इतना महत्व है कि उसने सामाजिक लक्ष्य से प्रेरित साहित्य को प्रोत्साहन और मान दिया तथा उन लोगों को भी मस्तक उठा कर चलने की उसने प्रेरणा दी जो अपनी रचनाओं के भीतर सामाजिक और सोद्देश्य होने के कारण शुद्ध कलावादियों, आनंदवादियों और सौंदर्यवादियों के सामने मन ही मन अपने को ईषत् हीन समझते थे।' स्वंय दिनकर जी ने छायावादी संस्कारों के प्रभाव में लिखना शुरू किया था, भले ही आगे चलकर वे इनसे संघर्ष करें। 1943 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। इनकी कविताओं में छायावाद तो दूर, दिनकर-जैसे छायावादोत्तर कवियों से भी काफी भिन्नता दिखलाई पड़ी। दिनकर जी ने इस नवीन काव्य-प्रवृत्ति का स्वागत किया : 'ये उन सभी कविताओं से भिन्न हैं जिन्हें देखने और सुनने के हम अब तक आदी रहे हैं। (इनका कवि) कविता के प्रचलित रूप एंव उसके प्रति जनता की सहज धारणाओं की उपेक्षा करता है। (इसमें) एक प्रकार की वैयक्तिकता व्यंजित होती है जो पाठकों को चिढ़ानेवाली है।' लेकिन इस कविता से बिदकने की जगह वे यह कहकर इसका आदर करते हैं कि

"इनमें उस चेतना का प्रतिबिम्ब है जो जीवन की विरूपताओं पर विचार करनेवाले असंतोषी मनुष्य में उत्पन्न होती हैं।"

संस्कारवश वे इन कविताओं की प्रशंसा नहीं कर पाते, लेकिन उन्हें ऐसा लगता है कि "इनके भीतर से हिंदी कविता कोई नया कदम उठा रही है।" 1943 के आसपास ही उन्होंने टी.एस. इलियट की कविताएँ पढ़ीं। इन्होंने कविता संबंधी उनकी सारी बनी हुई धारणाओं की नींव हिला दी। उन्होंने लिखा है, "अरे! इलियट की कविताएँ हम लोगों की कविताओं यानी मेरे गुरू रवीन्द्रनाथ और इक़बाल की कविताओं से कितनी भिन्न हैं। वे मेरी शांति भंग करने में समर्थ थीं, मेरे मन को वे अक्सर उस दिशा में भेज देती थीं, जिस दिशा में कोई क्षितिज नहीं था, न कोई किताब खुलकर बंद होती थी।" आगे उन्होंने श्री अरविंद के एक लेख में पढ़ा कि भविष्य की कविता मंत्र के समान छोटी और वैसी ही प्रभावशालिनी होगी। दिनकर जी ने महसूस किया कि इलियट की कविता में आगामी कविता का पूर्वाभास मिलता है। इलियट जैसे कवियों की खंडित वैयक्तिक चेतना ने उनका ध्यान आकर्षित किया। समझना कठिन है कि 'विपथगा', 'दिल्ली' और 'बापू' जैसे कविताओं के रचियता / दिनकर के स्वभाव से इस नए प्रकार की वैयक्तिक परक काव्य चेतना का क्या मेल हो सकता है। लेकिन आगे चलकर. उन्होंने खुद ऐसी कविताएँ लिखीं जो उनकी आरंभिक कविताओं से, या उनके लोकप्रिय कवि रूप से नितांत भिन्न दिखाई देतीं थीं।

समय और समाज दिनकर जी पर खूब असर डालता था। लेकिन यह प्रभाव बड़े सरल ढ़ंग से उन पर कभी नहीं पड़ा। 'कुरूक्षेत्र' जैसा काव्य लिखने के बाद उन्होंने 'रश्मिरथी' की रचना की और कर्ण को नायक के रूप में चुना। इसकी प्रेरणा उन्हें इस सवाल से मिली थी कि "कुमारी माता के गर्भ से उत्पन्न संतान को समाज में गुणोपयुक्त स्थान मिलना चाहिए या नहीं।" 'रश्मिरथी' को ध्यान से पढ़ने पर भी पता लगता है कि सामाजिक आचार-विचार और आग्रहों के बीच व्यक्ति के महत्व को स्थापित करने का आग्रह इस काव्य के पीछे काम कर रहा है।

व्यक्ति के निजीपन को, उसकी अपनी सत्ता के महत्व को समाज के हित के खिलाफ नहीं, तो कम से कम उसके सामने स्थापित करने का संघर्ष दिनकर-काव्य में अंतर्धारा की तरह प्रवहमान है। जैसा पहले कहा जा चुका है, दिनकर का यह स्वर तब पहचाना गया जब उनका संग्रह 'हारे को हरिनाम' प्रकाशित हुआ। इसे उन्होंने अपनी विनयपत्रिका कहकर पुकारा है। अपनी इन कविताओं को वे पुरानी कविताओं से भिन्न बताते हैं। उनकी एक कविता का शीर्षक ही है, 'पुरानी और नयी कविताएँ।' वे लिखते हैं कि उनके दोस्तों को उनकी पहले की कविताएँ ही पसंद हैं क्योंकि :

पुरानी कविताओं में रस है, उमंग है,
जीवन की राह वहाँ सीधी, बे-कटीली है।
सरिताएँ जितनी हैं, फूलों की छाँव में है,
सागर में नीलिमा है, चंचल तरंग है।

पुरुष बड़े ही पुरज़ोर हैं
या तो बड़े कोमल हैं अथवा कठोर हैं।
क्रोध में कभी जो नर-नाहर ये बोलते हैं,
भूमि काँपती है, कोल-कमठ होते,
दिग्गज दहाड़ते, समस्त्र शैल डोलते हैं

लेकिन नई कविताओं में मामला जटिल हो गया है। कविता मात्र भावोच्छ्वास नहीं रह गई है।

कविता न गर्जन, न सूक्ति है।
वीर का न घोष, न तो वाणी खरचिंतकों की,
.....
कविता न पूर्ति है, न माँग है।
.....
अर्थ नहीं, काव्य शब्द-योग है
.....
अर्थ को दबाने से ही शब्द बड़ा होता है
निश्चित-अनिश्चित का संगम जहाँ है सूक्ष्म,

कविता का सदम निरावलंब खड़ा होता है।

समय बदल रहा था। मनुष्य बदल रहा था। कविता भी बदल रही थी। दिनकर जी अपने संस्कारों से लड़ रहे थे, खुद को भी बदलने का संघर्ष कर रहे थे : "मुझे यह महसूस हो रहा है कि हम जिस युग में जी रहे हैं उसका संगीत टूट गया है। जैसे छंदों में काव्य-रचना करने का मैं अभ्यासी था, वे अधूरे लगने लगे हैं। मेरा अनुमान है कि जो छंद संगीत को अपील करते हैं, उनके द्वारा वर्तमान युग का टूटा हुआ संगीत पकड़ा नहीं जा सकता। ...यदि कविता की भूमि में अभी और रहना है तो अब गर्जमान छंदों से काम नहीं चलेगा।" वे शुरू से ही छंदोबद्ध कविताएँ लिख रहे थे। छंदोबद्ध ही नहीं, गेय भी। इसके साथ ही उनकी कविता में वक्तृत्व का गुण है! वक्तृत्वता में जो एक ओजपूर्ण प्रवाह होता है, जो श्रोता के सोचने-समझने की शक्ति पर छा जाता है और उसे बहा ले जाता है, उसके गुण से युक्त होकर दिनकर जी की कविताएँ भी पाठक को आंदोलित कर देतीं थीं। पर बाद में उन्होंने महसूस किया कि "छंदों के महत्व का एक कारण यह भी है कि कविता को अधिकांश जनता अब तक मनोरंजन का साधन मानती रही है।" छंदोबद्ध कविताओं का एक सहारा तुकें थीं। पर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि तुक भावों की अभिव्यक्ति में बाधा डालती हैं। भविष्य की कविता के बारे में बात करते हुए वे कहते हैं कि काव्य का संगीत से संबंध अभी चल रहा है, वह गलत संबंध है। उन्नत देशों में कविता और संगीत, ये दो कलाएँ अब परस्पर बहुत दूर हो गई हैं।"

दिनकर जी के कविता संबंधी विचारों के इस विकास को समझना इसलिए ज़रूरी है कि इससे उनकी कविता के उस पक्ष पर प्रकाश पड़ता है, जिसे प्राय: नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। दिनकर जी की बाद की कविताओं में एक मोड़ दिखलाई पडता है। जैसे वे समाज के कोलाहल से अपने मन की ओर मुड़ रहे हैं :

भागने जबसे लगा हूँ कीर्ति के कोलाहलों से,
हूक उठती है, अरे, मैं तो प्रवासी था।
अब बहुत दिन बाद अपने देश वापस जा रहा हूँ।
उनका यह स्वर उनके पाठकों को अलग-सा लगा
आजकल ये बहुत भाते हैं -
रात का एकांत, ये सुनसान सड़कें
फूल, फूलों की हवा, आकाश, बादल, चाँदनी।
और संध्या के समय मैदान के दूर्वादलों
देर तक लेटे हुए गिनना सितारों का।

इस समय वे जीवन की जटिलता को पहचानने का आग्रह भी करते हैं :

अगर मैं कोई आम खाता हूँ
तो क्या, उसमें केवल आम ही होता है ?
मुझे तो आम खाते समय
कई चीजों का ध्यान होता है।
आम के रस में वसंत की हवा,
सूरज की गर्मी और धरती का रस
इन सबका भान होता है।

'हारे को हरिनाम' तक आते-आते उनका स्वर अत्यंत परिपक्व, प्रौढ़ हो चुका था। इसीलिए वे 'संतुलित समाज' नामक कविता में लिख पाते हैं :

दुनिया केवल उन्हीं को न पूजे,
जिन्होंने जीत हासिल की है।
वह ज़रा हमदर्दी से देखे,
जिन्होंने ज़िंदगी की बाजी हारी हो।

असफलता के प्रति भी सहानुभूति के इस भाव में एक निजी स्पर्श है। यह पता लगता है 'अंतिम पुरुषार्थ' शीर्षक कविता से :

प्राण में जब क्लान्ति,
जीवन में थकन जब व्यापती है,

स्वप्न सारे टूट कर उड्डीन हो जाते
रूख के पत्ते यथा पतझड़ में।
स्वप्न मेंरे भी चतुर्दिक टूटकर उड़ने लगे हैं,
और मैं दुबली भुजाओं पर उठाये
व्योम का विस्तार एकाकी खड़ा हूँ।

यह थकान या निराशा उनकी कविता का स्वर बदलती है पर उनकी जिजीविषा का स्वर कमज़ोर नहीं पड़ा। उन्हें व्यक्तिगत जीवन में खाई चोट, अपमान आदि के बाद भी जीवन का स्रोत दिखलाई देता रहा :

अभी जीवित है स्रोत सुधा का।
कमी नहीं अब भी करूणा की वायु की।
.....
धन्यवाद! मैं, सचमुच, नहीं मरूँगा।
जब तक मेरे लिए कहीं भी करूणा का लवलेश है।
जब तक मेरे लिए सुधा का बिंदु कहीं भी शेष है,
मरण-कोट पर जीवन की ध्वजा उड़ाकर
मैं मृत्युंजयकवि प्रकाश की जय का गान करूँगा।

कविता को समाज की वेदना की अभिव्यक्ति के पद से अपदस्थ करने का कोई इरादा उनका न था :

जब तक जियूँ,
वीणा सुर में बोलती रहे।
वह मेरा ही नहीं,
सबका दर्द खोलती रहे।
.....
ताप सबको महसूस हो,
मगर आग नही मिले।
कविता में कवि कहाँ छिपा है,
इसका सुराग नहीं मिले।

'कला' शीर्षक इस कविता में कविता का अपना आदर्श बताकर वे कहते हैं कि यही कलाकार की सच्ची स्थिति है। और इसे मैंने आज तक निभाया था। लेकिन उन्हें इस बात का दुख रहा कि प्रायः उनके अपने, नितांत निजी स्वर को सुना नहीं गया। इस दुख को इन पंक्तियों में सुना जा सकता है :

लोग समझते रहे कि
मैं देश का दर्द गाता हूँ!
मगर दर्द मैंने
अपना ही गाया था।

'हारे को हरिनाम' या उसके पहले प्रकाशित संग्रह 'आत्मा की आँखे' पढ़कर प्रायः यह नतीजा निकाल लिया जाता है कि अपने जीवन के आखिरी दौर में वे निराश हो गए थे, इसलिए रहस्यवाद और आध्यात्मिकता की ओर चले गए। दिनकर जी नास्तिक कभी न थे। इसलिए इन संग्रहों की कविताओं को देखकर यह कहना कि वे अपने पहले के विश्वासों से हिल गए थे, उचित न होगा।

13.6 सारांश

रामधारी सिंह दिनकर का रचनाकाल बीसवीं सदी के तीसरे दशक से शुरू होकर आठवें दशक तक फैला हुआ है। आधुनिक भारत के लिए यह बड़ा महत्वपूर्ण काल है। तीसरे दशक से पाँचवें दशक के बीच अंग्रेज़ी हुकूमत को भारत से उखाड़ फेंकने का आंदोलन अपनी निर्णायक लड़ाई लड़ रहा था। एक तरफ महात्मा गांधी अखिल भारतीय स्तर पर जन-नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अहिंसा, सत्याग्रह और असहयोग के उनके तरीके राजनीतिक अस्त्र तो थे ही, वे एक व्यापक सांस्कृतिक बदलाव की माँग कर रहे थे। उन्नीसवीं सदी में देश के विभिन्न हिस्सों में जो पुरानी रूढ़ियों, कुरीतियों, अंधविश्वास के खिलाफ सुधार आंदोलन चल रहे थे, महात्मा गांधी ने उन सबको स्वाधीनता संग्राम का

अंग बना दिया। स्वाधीनता का संग्राम अब समाज के संभ्रांत, अतिशिक्षित समुदाय का मामला नहीं रह गया। निहत्था, निरक्षर, निरीह से निरीह साधारण भारतीय जन अब उसकी धुरी बन गया। इसने पूरे देश में जबर्दस्त उत्साह की लहर पैदा की। इसके समानांतर साम्यवादी आदर्शों से सुधारवाद से असंतुष्ट और क्रांति में विश्वास रखने वाले विचार भी तेज़ी से लोकप्रिय हो रहे थे। हिंदी साहित्य और हिंदी कविता पर इसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। द्विवेदी युग के बाद छायावाद ने इस नए स्वतंत्र मनुष्य के व्यक्तित्व को पहचाना। लेकिन उस जमाने की बेचैनी, छटपटाहट की उग्रता को अभिव्यक्त किया स्वच्छंद राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवियों ने, जिनमें माखनलाल चतुर्वेदी अग्रणीय थे। इनका असर लेकर छायावाद के परवर्ती काल में उत्तर छायावादी या छायावादोत्तरी प्रवृत्ति के कुछ सशक्त कवि उभरे, जिनमें बच्चन, भगवती चरण वर्मा और दिनकर प्रमुख हैं। मस्ती, फक्कड़पन, बेपरवाही इनके लक्षण थे। पर दिनकर के स्वर की विशिष्टता को अलग से लक्ष्य किया गया। उनकी कविताओं में मस्ती तो थी, पर साथ ही एक गंभीर समाजोन्मुखता थी, क्रांति का आह्वान था, शोषण और अत्याचार पर टिकी समाज-व्यवस्था का विरोध था। प्रखर राष्ट्रवादी तेवर के कारण दिनकर जी युवकों में खासे लोकप्रिय हुए। पर उनकी राष्ट्रवादिता में धर्म की मिलावट नहीं है। वह भारतीय संस्कृति की सामासिकता को महत्व देती है। उनका राष्ट्रवाद अंधराष्ट्रवाद भी नहीं है। उसमें दूसरों को दलित करके खुद को प्रतिष्ठित करने की चाह नहीं है। उनकी आक्रामक राष्ट्रीयता भारत पर हुए चीनी हमले के दौरान उभरी। 'कुरुक्षेत्र' में उग्र चोट खाए हुए राष्ट्र के क्रोध का विकट स्वर सुनाई पड़ता है। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान सामाजिक बनावट, जाति व्यवस्था आदि को लेकर जो मंथन चल रहा था, उस 'रश्मिरथी' का नायक कर्ण है और उसकी केंद्रीय समस्या यह है कि कुमारी माता के गर्भ से उत्पन्न संतान को समाज में गुण के अनुसार स्थान मिलना चाहिए या नहीं। दिनकर जी राष्ट्रवादी स्वर की कविताओं के साथ भिन्न प्रकार की कविताएँ भी लिख रहे थे। 'रसवंती और 'द्वंद्वगीत' में इस प्रकार की कविताएँ सम्मिलित हैं। प्रेम और श्रृंगार के प्रति आकर्षण उनमें शुरू से ही देखा जा सकता है। लेकिन उनके उच्च, धनगर्जन-भरे राष्ट्रवादी स्वर के नीचे यह दब सा जाता रहा है। प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार के प्रति आकर्षण का परिपाक आगे चलकर उनके प्रसिद्ध काव्य 'उर्वशी' में दिखलाई पड़ता है। लेकिन यह एक पुरुषकवि द्वारा नारी को मात्र भोग्य या श्रृंगार की सामग्री समझकर नहीं लिखा गया। इसमें आध्यात्मिकता का भी स्पर्श है, प्रेम भावना और सहज काम-वासना के बीच भी द्वंद्व चलता है। क्या काम से मनुष्य को मुक्ति मिलती है? ऐसे प्रश्न दिनकर जी की इस प्रकार की कविताओं में उठाए गए हैं।

आरंभ से ही दिनकर जी की कविताओं को बहिर्मुखी स्वभाव का माना गया। पर स्वंय उन पर बदलती हुई साहित्यिक विचारधाराओं का प्रभाव पड़ रहा था। 1943 के आसपास वे टी.एस. इलियट की कविताओं के संपर्क में आए। इन कविताओं ने उन पर गहरा असर डाला। द्विवेदीयुगीन और छायावादी काव्य-संस्कारों से निकलकर वे औद्योगिक, आधुनिक सभ्यता की खंडित मानवीय चेतना के द्वंद्व से परिचित हुए। आगे चलकर इस प्रभाव ने उनकी काव्य-रचना पर असर डाला। पर उनका स्वर प्रमुखतः वही रहा जो पहले था। पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, उनके स्वर में पाई जाने वाली निश्चयात्मकता कम होती गई और वे मानवीय स्वभाव की जटिलता को समझने और उसे अभिव्यक्त करने में लगे। देशभक्ति और राष्ट्रवाद के उद्घोष के बीच उनकी अपनी वेदनाएँ दब सी गई थीं। पहले निराशा, असफलता को जैसे उनके यहाँ कोई जगह नहीं है। पर 'आत्मा की आँखे' और 'हारे को हरिनाम' में उनका यह निजी स्वर उभरता है। इनमें छंद भी टूटते हैं, गेयता भी पीछे चली जाती है।

दिनकर जी ने छायावादी संस्कारों के साथ लिखना शुरू किया था। उन्होंने स्वंय लिखा है कि छायावाद के रोष से बचना मुश्किल था। पर उनके काव्य-आदर्श हिंदी से बाहर के कवि थे - उर्दू के इक़बाल और बंगला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर । इन दोनों ने दिनकर की काव्य-दृष्टि के निर्माण और विकास में गहरा योगदान किया। वैचारिक स्तर पर एक ओर वे कार्ल मार्क्स के साम्यवादी सिद्धांत से प्रभावित थे, वहीं दूसरी ओर महात्मा गांधी की करूणा से भरा हुआ मानवता वाद भी उन्हें आकर्षित करता था। इन प्रभावों के बीच उनका कवि व्यक्तित्व निर्मित हुआ। कविता में उन्होंने हमेंशा इसका ध्यान रखा कि पाठकों को परेशानी न हो। इसलिए सुस्पष्टता को कविद्रा के सबसे बड़े कलात्मक गुणों के रूप में देखा। छंदो का विरोध उनके समक्ष आरंभ हो गया था। निराला ने इसमें उदाहरण उपस्थित किया था। पर दिनकर जी का लक्ष्य था पंत के सपने को मैथिलीशरण गुप्त की सफाई से लिखना। इसलिए मुक्त छंद के प्रभुत्व के बाद भी वे आसानी से लोगों की जुबान पर चढ़ने वाली, गेयता के गुणों से युक्त कविता लिखते रहे। सुस्पष्टता के प्रति आग्रह अंत तक बना रहा।

लेकिन 1943 के आस-पास टी.एस. इलियट को पढ़ने के बाद और हिंदी में प्रयोगवादी काव्य आंदोलन को समीप से देखने पर उन्होंने अपनी कविता संबंधी धारणाओं में और परिवर्तन किया। प्रौढ़ कविता का लक्षण उनके अनुसार यह होगा कि वह संगीत से बिलकुल स्वतंत्र होगी। गेयता उसकी पूर्व शर्त न होगी। वे प्रयोगवादी ढंग की कविताएँ तो नहीं लिख रहे थे, लेकिन कविता में सब कुछ साफ-साफ आए -- इस पर उनका आग्रह पहले जैसा नहीं रह गया था।

13.7 प्रश्न

1. राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति दिनकर के काव्य में किस रूप में हुई है, विवेचन कीजिए।
2. दिनकर के काव्य में सौंदर्य और प्रेम का स्वर मुख्य स्वर रहा है, सोदाहरण विवेचन कीजिए।
3. उत्तर छायावादी कवियों में दिनकर अपने युग के एक प्रतिनिधि कवि के रूप में उभरते है इस कथन के आधार पर दिनकर के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कीजिए!
4. दिनकर की काव्य कला संबंधी मान्यताओं को स्पष्ट कीजिए।

इस खंड की उपयोगी पुस्तकें

1. छायावाद का समाज शास्त्र, डॉ0 शशि मुदीराज, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1988।
1. महादेवी के काव्य में लालित्य योजना, डॉ0 राधिका सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1979।
2. महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, डॉ0 मनारेमा शर्मा, साहित्य संस्थान, कानपुर, प्र.सं. 1976।
3. महादेवी संस्मरण ग्रंथ, (संपा.) पंत तथा शांति जोशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1967।
4. महादेवी वर्मा, शचीरानी गुर्टू, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्र.सं. 1970।
5. छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ0 सुषमा पाल।
6. आधुनिक हिंदी काव्य में प्रतीकवाद, मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1966।
7. छायावाद का सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन, डॉ0 विमल, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1977।
8. छायावाद का काव्य शिल्प, प्रतिमा कृष्ण बल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971।
9. महादेवी की कविता में सौंदर्य भावना, डॉ0 सी. तुलसम्मा, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1984।
10. सुमित्रानंदन पंत : डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
11. सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य (दो भाग) : शांति जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
12. सुमित्रानंदन पंत : सं0 शची रानी गुर्टू
13. सुमित्रानंदन पंत : कवि और काव्य : शारदा लाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. युग-कवि पंत की काव्य-साधना : डॉ0 विनय कुमार
15. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक - आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
16. हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास, लेखक - पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी।
17. कवि-दृष्टि, लेखक - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ।
18. छायावाद, लेखक - डा0 नामवर सिंह
19. कविता के नये प्रतिमान, लेखक - डा0 नामवर सिंह
20. रूद्र-समग्र (संपादक - डा0 नंद किशोर नवल) की भूमिका
21. आधुनिक हिंदी कविता, लेखक - डा0 नंद किशोर नवल

इकाई 9 महादेवी वर्मा की काव्य संवेदना

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 महादेवी की काव्य संवेदना
9.3 महादेवी की कविता में वेदना भाव
9.4 महादेवी की कविता में रहस्य भावना
9.5 महादेवी की कविता में प्रणय की अनुभूति
9.6 महादेवी की कविता में सौंदर्य चित्रण
9.7 सारांश
9.8 प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको महादेवी वर्मा की काव्य संवेदना का परिचय देंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप महादेवी वर्मा की कविता के विभिन्न पहलुओं पर विमर्श कर सकेंगे। आपको महादेवी की कविता के मूल तत्वों की जानकारी होगी और आप उनकी कविता के विविध आयामों का सम्यक् विश्लेषण और विवेचन कर पाएंगे। हम यह देखेंगे कि महादेवी वर्मा अपने युगीन यथार्थ से संवेदना के धरातल पर किस प्रकार प्रभावित होती हैं और उन्होंने अपने समग्र काव्य में इसे किस प्रकार अभिव्यक्त किया है। इस प्रक्रिया में हम महादेवी की जीवन-दृष्टि पर गौर करते हुए उनके काव्य की प्रासंगिक विशेषताओं का आकलन भी करेंगे।

9.1 प्रस्तावना

महादेवी वर्मा छायावाद की एक प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। छायावाद का युग उथल-पुथल का युग था। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि सभी स्तरों पर विभ्रम, द्वंद्व, संघर्ष और आंदोलन इस युग की विशेषता थी। इस पृष्ठभूमि में, अन्य संवेदनशील कवियों के समान ही, महादेवी ने भी अपनी रचनाशीलता का उपयोग किया। यहाँ हमारा लक्ष्य छायावादी युग की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि की विशद व्याख्या करना नहीं है। किंतु, यहाँ हमें इस बात को ध्यान में रखकर अवश्य आगे बढ़ना है कि कवि अपने समय की वास्तविकता, यथार्थ से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में उसकी विशिष्ट प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति देता है और उसकी रचनाएँ ही उस युग-विशेष की मूल प्रवृत्ति को रूपायित करती हैं। लेकिन महादेवीजी अपनी काव्य रचनाओं में प्रायः अंतर्मुखी रही हैं। अपनी व्यथा, वेदना और रहस्य भावना को ही इन्होंने मुखरित किया है। उनकी कविता का मुख्य स्वर आध्यात्मिकता ही अधिक दिखायी देता है। यद्यपि उनका गद्य रचनाओं में उनका उदार और सामाजिक व्यक्तित्व काफी मुखर है। इस इकाई में हम उनकी कविता में वेदना के भाव की व्याख्या करेंगे। हम उनकी व्यक्तिगत दुःखानुभूति की विवेचना करेंगे और उनकी वेदना को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों पर विमर्श करेंगे। महादेवी ने एक दिव्य सत्ता के दर्शन हर कहीं, हरेक उपादान में किए हैं। उस अलौकिक प्रिय से मिलन की इच्छा ने उन्हें उद्वेलित किया। रहस्य के आवरण में ही इसकी अभिव्यक्ति हुई। यहाँ हम उनके काव्य में विद्यमान रहस्यानुभूति का अनुशीलन करेंगे। हम यह कह सकते हैं कि महादेवी वर्मा का काव्य प्रासाद इन चार स्तम्भों पर अवस्थित है - वेदनानुभूति, रहस्य-भावना, प्रणय भाव, और सौंदर्यानुभूति। यदि हम यह कहें कि महादेवी वर्मा के काव्य का मूल भाव प्रणय है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनकी कविताओं में उदात्त प्रेम का व्यापक चित्रण मिलता है। अलौकिक प्रिय के प्रति प्रणय की भावना, नारी-सुलभ संकोच और व्यक्तिगत तथा आध्यात्मिक विरह की अनुभूति उनके प्रणय के विविध आयाम हैं। महादेवी की कविता में सौंदर्य के विविध रूपों का मनोहर चित्रण हुआ है। उनकी सौंदर्यानुभूति विलक्षण है। वह, छायावाद के अन्य कवियों के समान ही, सौंदर्य-भावना को अपने युग की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में अंगीकार करती हैं। वह भी अपनी कविताओं में सौंदर्य के सूक्ष्म रूप को ही प्रतिष्ठित और चित्रित करती हैं। महादेवी वर्मा सौंदर्य को 'सत्य प्राप्ति का साधन' मानती हैं और उनकी सौंदर्यानुभूति प्रकृति तथा मानव जीवन दोनों की ओर आकृष्ट होती है। जहाँ वह प्रकृति के

विभिन्न रूपों में विराट सौंदर्य के दर्शन करती हैं वहीं नारी के विविध रूपों का भी उन्होंने चित्रण किया है। छायावादी कवि चतुष्ठय में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। इकाई के आगामी अंशों में हम उनकी काव्य संवेदना की उपर्युक्त विशेषताओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

9.2 महादेवी की काव्य संवेदना

छायावादी काव्य एक नई संवेदनशीलता का काव्य था। इस युग के कवि विशिष्ट अर्थ में संवेदनशील थे। महादेवी वर्मा के संदर्भ में उनका व्यक्तित्व अपनी इंद्रधनुषी आभा लिए उनके काव्य-लोक में उपस्थित होता है। इस प्रसंग में उनका नारी होना उनके पक्ष में जाता है। उन्होंने काव्य रचना को अत्यंत गंभीरता से लिया है। उनकी जीवन-दृष्टि मानवीय गुणों से सम्पृक्त और संवेदनाओं से अनुप्राणित है। उसमें उदात्त और गौरवमय भाव मिलते हैं और समस्त प्राणि-जगत के प्रति उनकी करुणा उमड़ी पड़ती है। आगे के अंशों में हम इन बिंदुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे और महादेवी की कविताओं में उनका अवतरण भी देखेंगे।

छायावादी युग भारतीय नवजागरण का काल था, जहाँ सभी स्तरों पर मुक्ति के लिए संघर्ष सक्रिय था। नारी भी अपनी मुक्ति की खोज में रत थी। महादेवी में मुक्ति की उड़ान स्पष्ट, असीम और अनंत है। उनमें नारी के अभिमानी रूप की अभिव्यंजना हुई है। मुक्ति की आकांक्षा भाषा के स्तर पर भी प्रकट होती है और शिल्प के स्तर पर भी। छायावादी भाव-बोध के लिए गीत आदर्श विधा बनकर आई। महादेवी ने अपने काव्य के लिए गीत विधा को ही चुना। वस्तुतः अपने गीत काव्य में महादेवी वर्मा की काव्य संवेदना का सहज प्रत्यक्षीकरण हुआ है। अपने युग का अध्यात्म और भौतिकता का द्वंद्व उन्हें रहस्य का आवरण लेने को बाध्य करता है और वह अभिव्यक्ति के स्तर पर प्रायः प्रतीक का सहारा लेती हैं। महादेवी की रहस्य भावना पर हम आगे सविस्तार चर्चा करेंगे। जबकि उनकी प्रतीक योजना पर हम अलग इकाई में प्रकाश डालेंगे।

महादेवी की काव्य संवेदना की निर्मिति और विकास में उनके व्यक्तिगत एकाकीपन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिसकी वेदना विभिन्न आयामों में उनके काव्य में प्रकट हुई है। वेदना के विविध रूपों की उपस्थिति उनके काव्य जगत की विशिष्टता है। महादेवी की कविता में व्याप्त इस वेदना के विषय में हम इस इकाई में अलग से चर्चा करेंगे।

प्रणय एक जीवन-दृष्टि के रूप में महादेवी के रचना-लोक में विद्यमान रहा है। उनका प्रियतम से नाता अत्यंत गूढ़, अत्यंत अज्ञेय है। इसे समझने के लिए कभी-कभी तो आत्मा-परमात्मा के संबंध का सहारा लेना पड़ता है। जीवन को 'विरह का जलजात' मानने वाली महादेवी प्रणय के संयोग पक्ष का भी चित्रण करती है। प्रेम अपने समग्र रूप मे महादेवी की कविता में प्रधानता से विद्यमान है।

महादेवी ने अखिल ब्रह्मांड में सौंदर्य के दर्शन किए हैं और उसे अपने गीतों में प्रमुख स्थान दिया है। स्थूल में सूक्ष्म के दर्शन उनकी सौंदर्य-दृष्टि की विशिष्टता है। सौंदर्य की अभिव्यंजना उनके काव्य में विभिन्न रूपों में हुई है और आनंद की सृष्टि करने में वह सफल रही है। व्यथा-वेदना से आनंद की ओर यह प्रस्थान उनकी काव्य-यात्रा का सार है। सम्यक् वेदनानुभूति का प्रस्फुटन आनंद में होता है। महादेवी के सौंदर्य चित्रण में सूक्ष्मता है। वहाँ स्थूल सौंदर्य के लिए स्थान नहीं है। ऐसे में प्रकृति अपने समग्र सौंदर्य में उनके काव्य में उपस्थित होती है। यहाँ हम महादेवी वर्मा की काव्य संवेदना के विभिन्न पक्षों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

9.3 महादेवी की कविता में वेदना भाव

महादेवी वर्मा की कविता में दुःख और करुणा का भाव प्रधान है। वेदना के विभिन्न रूपों की उपस्थिति उनके काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। वह यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं करतीं कि वह 'नीर भरी दुःख की बदली' हैं। वस्तुतः समूचा छायावादी काव्य ही व्यक्तिवाद का प्रभाव लेकर चला और वहाँ आत्माभिव्यक्ति को सहज ही स्थान मिला। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में लिखते हैं - '1900-1920 ई. की खड़ी बोली की कविता में कवि के अपने राग-विराग की प्रधानता हो गई। विषय अपने आप में कैसा है यह मुख्य बात नहीं थी, बल्कि मुख्य बात यह रह गई थी कि

विषयी (कवि) के चित्त के राग-विराग से अनुरंजित होने के बाद वह कैसा दिखता है। विषय इसमें गौण हो गया, विषयी प्रधान।'

जहाँ तक महादेवी वर्मा का प्रश्न है, उनकी वेदना के उद्‌गम के बारे में निश्चित तौर पर कुछ कहना संभव नहीं है। उनके एक गीत की पंक्ति है - 'शलभ मैं शापमय वर हूँ / किसी का दीप निष्ठुर हूँ।' उनके पूरे काव्य पटल पर इस तरह के असंख्य बिम्ब बिखरे पड़े हैं, जिनसे उनके अंतस में पलती अथाह पीड़ा का स्पष्ट संकेत मिलता है। एक विचित्र-सा सूनापन, एक विलक्षण एकाकीपन बार-बार उनकी कविताओं में उमड़ता दिखाई देता है। अल्पायु में ही विवाहित होने के बाद, उन्होंने स्वेच्छा से एकांत जीवन का चयन किया। डॉ.नगेन्द्र का मानना है कि उनके जीवन में जो एकाकीपन था वह किसी अभाव की देन था। पीड़ा का साम्राज्य ही उनके काव्य-संसार की सौगात है - 'साम्राज्य मुझे दे डाला / उस चितवन ने पीड़ा का।' विफल प्रेम का यह रुदन महादेवी के काव्य की अंतर्वस्तु है। यह पीड़ा ही कवयित्री का प्रारब्ध है - 'मेरी मदिरा मधुवाली / आकर सारी ढुलका दी / हंस कर पीड़ा से भर दी / छोटी जीवन की प्याली।' महादेवी की वेदना अनुभूतिजन्य होने के कारण उनकी कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति भी अत्यंत सहज ढंग से हुई है। उसमें कृत्रिमता कहीं दिखाई नहीं पड़ती। वह कितनी सहजता से कह देती हैं - 'रात सी नीरव व्यथा / तम सी अगम मेरी कहानी।' किंतु, यहाँ हमें यह तथ्य ध्यान में रखना होगा कि महादेवी के काव्य में अभिव्यंजित दुःख और वेदना जैसे भाव आरोपित बिल्कुल नहीं हैं, इनका वरण तो कवयित्री ने स्वयं किया है। उनका यह कथन इस वक्तव्य की पुष्टि करता है - 'हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किंतु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।' (यामा / अपनी बात) निष्ठुर दीप-सी तिल-तिल जलती कवयित्री अपने काव्य में इस व्यक्तिगत व्यथा को शब्द देने में संकोच नहीं करती।

किंतु, महादेवी की वेदना नितांत वैयक्तिक भी नहीं है। स्वयं उन्होंने अपने जीवन में दुःख और अभाव की बात से इंकार किया है। वस्तुतः उनके वेदना-भाव का प्रासाद दो आधार-भूमियों पर टिका हुआ है - आध्यात्मिक भावभूमि तथा मानवतावादी भावभूमि। दोनों आधारभूमियाँ परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।' (डॉ. सुषमा पाल / छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि)। बौद्ध धर्म के अध्ययन और उसके प्रति उनके रुझान ने भी महादेवी के वेदना-भाव के लिए आध्यात्मिक भावभूमि तैयार की। महादेवी ने दुःख को आध्यात्मिक स्तर पर ही अपनाया। भारतीय संस्कारों में पगी महादेवी करुणा-भाव में आकंठ डूबी हुई हैं। वेदना की अधिकता उन्हें अध्यात्म का आवरण लेने को बाध्य करती है। किसी दार्शनिक की तरह वह कह उठती हैं - 'विजन वन में बिखरा कर राग, / जगा सोते प्राणों की प्यास, / ढालकर सौरभ में उन्माद नशीली फैलाकर विश्वास, / लुभाओ इसे न मुग्ध वसन्त! / विरागी है मेरा एकान्त!' और, 'मैं क्यों पूछूँ यह विरह निशा / कितनी बीती क्या शेष रही?' तथागत की महाकरुणा का प्रभाव इन पंक्तियों में देखा जा सकता है - 'अश्रुकण से डर सजाया त्याग हीरक हार, / भीख दुःख की माँगने जो फिर गया प्रति द्वार, / शूल जिसने फूल छू चन्दन किया सन्ताप, / सुनो जगाती है उसीं सिद्धार्थ की पदचाप, / करुणा के दुलारे जाग!'

जब व्यक्ति वेदना के अनुभव से गुज़र चुकता है और उसकी तीव्रता के दंश सह चुकता है तो वह पराई पीर को उसी धरातल पर खड़े होकर समझ सकता है। यहीं से उसमें समग्र मानव जाति के दुःखों के प्रति सहानुभूति और करुणा के भाव जन्म लेते हैं। महादेवी के वेदना-भाव-प्रासाद की दूसरी आधारभूमि मानवतावादी भावभूमि है। मानव मात्र के प्रति करुणा का प्रत्यक्षीकरण महादेवी के गद्य लेखन में देखा जा सकता है। पद्य के क्षेत्र में, 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' तक आते-आते उनकी वेदना को मानव मात्र के प्रति करुणा का रूप लेते देखा जा सकता है। इस दृष्टि से 'दीपशिखा' महादेवी की अनुपम कृति है। इसी संग्रह की ये पंक्तियाँ देखिए, जहाँ कवयित्री की चिंता केवल मनुष्य नहीं, तन्वंगी पक्षियों के प्रति भी प्रकट होती है - 'पथ न भूले एक पग भी / घर न खोए लघु विहग भी / स्निग्ध लों की तूलिका से / आँक सबकी छाँह उज्ज्वल।' महादेवी वर्मा व्यापक सृष्टि के पक्ष में अपने स्वयं के दुःख, अपनी वेदना को भी तिरोहित करने को तैयार रहती हैं। एक कविता में वह कहती हैं - 'मेरे बंधन नहीं आज प्रिय, / संसृति की कड़ियाँ देखो / मेरे गीले पलक छुओ मत, / मुरझाई कलियाँ देखो।' एक अन्य कविता में, सुमन के माध्यम से वह वंचितों, शोषितों की उपेक्षा से क्षुब्ध होकर उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करती हैं - 'कर दिया मधुर और सौरभ / दान सारा एक दिन / किंतु रोता कौन है / तेरे लिए दानी सुमन?' अब, एक और उदाहरण देखिए - 'कह दे माँ क्या देखूँ। / देखूँ खिलती कलियाँ या / प्यासे सूखे अधरों को / तेरी चिर-यौवन सुषमा / या जर्जर जीवन देखूँ।' क्या अब भी हम कुछ आलोचकों की इस दलील का समर्थन कर सकते हैं कि महादेवी वर्मा के काव्य

पटल पर मिलने वाले वेदना के रंग उनकी वैयक्तिक व्यथा की अभिव्यक्ति हैं? क्या उनपर पलायनवादी होने का आरोप लगाना औचित्यपूर्ण है? इन प्रश्नों के उत्तर में यहाँ हम डॉ.शोभानाथ यादव के इस कथन को उद्धृत करना चाहेंगे - 'आत्मवादी कवि या कलाकार अंतर्मुखी अवश्य होता है और इस रूप में महादेवी भी अधिक प्रबल हैं, किंतु उनके अंतर्मुखी चिंतन में जहाँ विरह-मिलन, तृप्ति-अतृप्ति, आशा-निराशा की हल्की गहरी लहरियाँ मचलती रहती हैं, वहाँ जीवन के अनेक उद्‌बोधन गीत भी फूट पड़े हैं, करुणा और मानवता की अनगिनत ध्वनियाँ भी मुखर हो उठी हैं।' डॉ.रामविलास शर्मा के शब्दों में - '(महादेवी वर्मा) की करुणा व्यक्तिपरक अथवा आत्मगत ही नहीं है। वह बहिर्मुखी एवं समाजपरक भी है, जिसका प्रमाण उनकी अनेक गद्य रचनाएँ, बंगाल के दुर्भिक्ष से संबंधित काव्य संकलन की भूमिका आदि है।'

यह एक विलक्षण तथ्य है कि महादेवी के काव्य-लोक में, वेदना की परिणति आनंद में होती है। कवयित्री दुःख और पीड़ा के बोझ तले घुट-घुटकर सिसकती नहीं, अपितु निरंतर बढ़ते हुए आनंद भाव की ओर उन्मुख होती है। वह आनंद की ऐसी अवस्था में पहुँच जाती है, जहाँ 'नयन श्रवणमय श्रवण नयनमन' हो जाता है। वेदना की धारा प्रवाहित होकर अंततः आनंद के सागर में ही जा मिलती है। यहाँ तक कि मृत्यु को भी महादेवी वर्मा अंत अथवा दुःखद नहीं मानतीं। उनकी दृष्टि में तो - 'अमरता है जीवन का ह्रास / मृत्यु जीवन का चरम विकास।' मृत्यु तो नियति है जो आनंद के ही सौ द्वार खोल देती है - 'सृष्टि का है यह अमिट विधान / एक मिटने में सौ वरदान।' उनका जीवन-दर्शन मानवता के लिए दुःख और वेदना के काँटे छोड़ना नहीं जानता। वह तो एक नई आशा, अमल आनंद की ही सृष्टि करना चाहती हैं। वह तो 'सब बुझे दीपक जला' देना चाहती हैं। उनकी कामना है - 'दुःख से सुखमय सुख हो दुःखमय, / उपल बने पुलकित से निर्झर, / मरु हो जाए उर्वर गायक।' जैसा कि हम इस इकाई में पहले कह चुके हैं, व्यथा-वेदना से आनंद की ओर यह प्रस्थान महादेवी वर्मा की काव्य-यात्रा का सार है। अपने इस विचार-बिंदु के समर्थन में हम 'महादेवी अभिनंदन ग्रंथ' से दो अंश उद्धृत करेंगे - (i) 'वे हमें अपने काव्य में स्वर्ग की देवी-सी जान पड़ती हैं, मानो परीक्षार्थ कुछ दिन भूतल पर निवास करने आई हों। अपने जीवन की उच्चता और आनंद का उन्हें पूर्ण आभास है और इस मृत्युलोक के जीवन में भी वही आनंद प्राप्त करती हैं।' (डॉ.भगीरथ मिश्र); और (ii) 'जीवन के अवसान समीप होते हुए भी दीप जलने लगते हैं तो समस्त कण-कण दीपक और तृण-तृण वर्तिका बन जाते हैं और हर नए पल में एक नई ज्योति झिलमिलाने लगती है। कितना आशावादी और आनंदवादी दर्शन है जिसे अनेक बार दुःख और उदासीनता के रूप में लोगों ने देखने की भूल कर डाली है।' (शक्ति त्रिवेदी)

इस तरह हमने देखा कि महादेवी वर्मा में वेदना का व्यक्तिगत रूप मिलता है तो समष्टिगत रूप भी। उनके वेदना-भाव का महल आध्यात्मिक और मानवतावादी भावभूमियों पर खड़ा है। उनकी वेदना के बारे में कोई निश्चित एक राय नहीं है। किंतु यह तो हम कह ही सकते हैं कि यह सहज है कि इसका वरण कवयित्री ने स्वयं किया और अपनी कविता में इसे प्रमुख स्थान दिया। उनकी वेदना प्राणि-मात्र के प्रति करुणा का रूप धारण करती है और वह अपने काव्य में समस्त मानव समाज, इसके वंचित, शोषित वर्ग की पक्षधरता करती हैं। उनके काव्य लोक में वेदना की परिणति आनंद में होती है, और वह अपनी कविताओं के माध्यम से दुःखी जनों में नई आशा, अमल आनंद का संचार करती हैं। यदि महादेवी के काव्य में व्याप्त वेदना भाव के लिए उनके एकाकीपन, उनके व्यक्तिगत जीवनानुभवों को दोषी ठहराया जाता है तो बैजनाथ प्रसाद (आलोचना पर छायावाद का प्रभाव) के इस कथन को रेखांकित करना समीचीन होगा कि, 'गत महायुद्ध के बाद भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि निराशा का स्वर काव्य में प्राकृतिक रूप से उद्‌भूत हुआ। छायावादियों ने अगर उसका साथ दिया है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वे जान-बूझकर अकर्मण्यता का प्रचार कर रहे थे, बल्कि चाहते हुए उनके ओठों पर हंसी नहीं आ रही थी।'

महादेवी वर्मा की कविता में वेदना-भाव के उपर्युक्त विमर्श के बाद, आइए हम उनकी कविता में रहस्य भावना पर दृष्टिपात करें।

9.4 महादेवी की कविता में रहस्य भावना

जब छायावादी कवियों की, और उनमें भी विशेषकर महादेवी वर्मा की बात आती है तो रहस्यवाद की चर्चा अनिवार्य हो जाती है। हम ऊपर यह निवेदन कर चुके हैं कि छायावाद का युग उथल-पुथल, संक्रमण और लगभग प्रत्येक स्तर पर संघर्ष और विभ्रम का युग था। एक अर्थ में द्वंद्व इस काल का

प्रधान गुण था। यहाँ यथार्थ और आदर्श का द्वंद्व था तो इतिहास और मिथक का द्वंद्व भी, वर्तमान और अतीत का द्वंद्व था तो वास्तविकता और अध्यात्म का भी द्वंद्व था। इस अंतिम द्वंद्व ने विशेष रूप से छायावादी रचनाकार को रहस्यवाद की ओर मोड़ दिया। महादेवी के संदर्भ में कुछ आलोचक व्यक्तिगत एकाकीपन और अभाव को भी रहस्यानुभूति का कारण मानते हैं। जो भी हो, महादेवी और रहस्यवाद एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं। महादेवी वर्मा की रहस्य भावना एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं। महादेवी वर्मा की रहस्य भावना की विवेचना करने से पहले आइए हम रहस्यवाद के पारंपरिक अर्थ को समझने का प्रयास करें। कुछ परिभाषाएँ देखिए :

- 'चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)
- व्यष्टि सौंदर्य-दृष्टि छायावाद है और समष्टि सौंदर्य-दृष्टि रहस्यवाद।' (आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी)
- 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता।' (डॉ.रामकुमार वर्मा)
- 'काव्य में आत्मा की मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।' (जयशंकर प्रसाद)

इस आलोक में हम महादेवी वर्मा की कविताओं में रहस्यानुभूति की उपस्थिति का आकलन करें तो भी यही प्रमाणित होता है कि वह सर्वत्र, और प्रत्येक उपादान तथा प्रकृति-व्यापार में एक विराट सत्ता के दर्शन करती हैं। वह उसके साथ तादात्म्य, साक्षात्कार को व्याकुल दिखाई देती हैं। यहीं से उनके काव्य में रहस्य की सृष्टि होती है। वह स्वयं को प्रकृति (का ही कोई अंग) मानकर उस दिव्य सत्ता से मिलन को तत्पर रहती हैं। महादेवी स्वयं कहती हैं - 'हमारे मूर्त और अमूर्त जगत एक-दूसरे से इस प्रकार मिले हुए हैं कि एक यथार्थदर्शी दूसरे को रहस्यदृष्टा बनकर ही पूर्णता पाता है।' (मेरे प्रिय निबंध / रहस्यवाद) उनका नारी होना इस रहस्य भाव को और भी गहन करता है। वे एक रागात्मक संबंध स्थापित करती हैं उस परम पुरुष के साथ - 'जब असीम से हो जाएगा / मेरी लघु सीमा का मेल' यही आत्म-समर्पण उनका पावन लक्ष्य है। आत्मा-परमात्मा के रागात्मक संबंध के इस पक्ष की व्याख्या करते हुए वह स्वयं कहती हैं - 'समर्पण के भाव ने ही आत्मा को नारी की स्थिति दे डाली। सामाजिक व्यवस्था के कारण नारी अपना कुल-गोत्र आदि परिचय छोड़कर पति को स्वीकार करती है और स्वभाव के कारण उसके निकट अपने आपको पूर्णतः समर्पित कर उसपर अधिकार पाती है। अतः नारी के रूपक से सीमाबद्ध आत्मा का असीम में विलय होकर असीम हो जाना सहज ही समझा जा सकता है।' (साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध)

महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति पर यदि हम सतर्क दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि उनके काव्य में रहस्यवाद के सभी चरणों की अभिव्यंजना हुई है। उनमें, कौतुहल और जिज्ञासा रहस्यानुभूति का सबसे पहला चरण होता है। मानव किसी चकित शिशु-सा जब ब्रह्मांड के विराट लीला व्यापार को देखता है तो वह बस चकित होकर रह जाता है और जब उसकी बुद्धि कोई भी व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर पाती तो वह रहस्य में डूब जाता है। 'किस शिल्पी ने अनजान / विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण' महादेवी भी चकित हो सोचती हैं और प्रश्न करती हैं - 'प्रथम प्रणय की सुषमा सा / यह कलियों की चितवन में कौन?' चकित मानव को हर ओर एक परम सत्ता के ही दर्शन होते हैं और वह उसकी एक झलक पाने को आतुर रहता है। महादेवी वर्मा ने भी प्रकृति के विविध उपादानों में इस अलौकिक प्रियतम को ही देखा है और इन्हीं को देख कर उसके अपार सौंदर्य की कल्पना की है - 'चितवन तन-श्याम रंग, / इन्द्रधनुष भृकुटि भंग, / विद्युत का अंग राग / दीपित मृदु अंग-अंग, / उड़ता नभ में अछोर / तेरा नव-नील चीर।' इस परम प्रिय के परोक्ष दर्शन कर कवयित्री उससे मिलन के लिए उत्कंठित हो जाती है। रागात्मक संबंध की यह महत्वपूर्ण विशेषता है। कवयित्री अपने परम प्रिय से मिलने की इच्छा व्यक्त करती है - 'जो तुम आ जाते एक बार! / कितनी करुणा कितने संदेश / पथ में बिछ जाते बन पराग। / गाता प्राणों का तार-तार / अनुराग भरा उन्माद राग, / आँसू लेते वे पग पखार। / जब यह कामना पूर्ण होती नहीं दिखती तो वह स्वप्न का सहारा लेने में भी कोई संकोच नहीं करती - 'तुम्हें बाँध पाती सपने में!' अथवा, 'मैं पलकों में पाल रही हूँ / वह सपना साकार किसी का।'

महादेवी वर्मा एक रहस्यवादी कवि के रूप में केवल अद्वैतवाद से बंध कर नहीं चलतीं। वह प्रियतम के साथ एकाकार तो हो जाना चाहती हैं - 'तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या? / चित्रित तू, मैं हूँ रेखा-क्रम, / मधुर राग तू, मैं स्वर-संगम, / तू असीम, मैं सीमा का भ्रम, / काया-छाया में रहस्यमय! / प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या!' किंतु वह स्वाभिमानी हैं, अपने निजत्व को भी वह विसर्जित नहीं कर सकतीं - 'सजनि मधुर निजत्व दे, / कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।' स्त्री होने के नाते उनमें स्त्री-

सुलभ गुण भी विद्यमान हैं, जो इस रागात्मकता में व्यवधान बनते हैं। एक स्त्रियोचित लज्जा और संकोच उनके प्रिय की ओर बढ़ते चरणों को रोक लेते हैं। प्रिय का स्मरण ही लाज-संकोच का पट डाल लेने को पर्याप्त होता है - 'सीखते क्यों चंचल गति भ्रू, / भरे मेघों की धीमी चाल, / दृष्टि कन-कन को क्यों चूम, / अरुण आभा सी देते झाल? / सजल चितवन में क्यों है हास? / अधर में क्यों सस्मित निश्वास?'

इस प्रकार, महादेवी वर्मा में रहस्यानुभूति के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। मिलन की इच्छा, स्मरण, स्वप्न, और साक्षात मिलन के बाद विरह का अनिवार्य चरण भी आता है। महादेवी की कविता में विरह के उदाहरणों की तो कोई कमी नहीं, बल्कि उनका समूचा काव्य ही विरह के रंग में रंगा हुआ है। उनके समीप तो संपूर्ण जीवन ही 'विरह का जलजात' है। किंतु, वह अपनी लघुता को भी स्वीकार करती हैं - 'क्षुद्र हैं बुद्‌बुद् मेरे प्राण, / तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।' और आत्म-बलिदान के लिए भी तैयार रहती हैं - 'नित घिरूँ झर झर मिटूं प्रिय / घन बनूं वर दो मुझे प्रिय!'

आद्योपांत अपने काव्य में रहस्यवाद को प्रकट करने वाली महादेवी वर्मा ने यह कभी स्वीकार नहीं किया कि वह यथार्थ-विरोधी रहस्य लोक में विश्राम करें। उन्होंने अपनी संवदेनाओं को समाज के उपेक्षित वर्ग के साथ भी जोड़ा। इस बिंदु को हम ऊपर भी रेखांकित कर चुके हैं। वह एक अलग आदर्शवादी, मंगलकारी लोक का निर्माण करना चाहती हैं। इस संदर्भ में वह दृढ़ संकल्प की घोषणा करती हैं - 'जिसको पथ शूलों का भय हो / वह खोजे नित निर्जन गह्वर।' हमारा विद्यार्थियों से यही आग्रह है कि वे महादेवी की अधिक से अधिक रचनाएँ पढ़ें। इससे वे उनकी रहस्यानुभूति तथा अन्य काव्यगत विशेषताओं का भरपूर रसपान कर पाएंगे।

जब हम छायावादी रहस्यवाद की बात करते हैं तो हम उसकी युगीन विशेषताओं को अनदेखा नहीं कर सकते। विभिन्न स्तरों पर पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े समाज के लिए यह मोटे तौर पर मुक्ति-संघर्ष का युग था। जन-मानस मुक्ति की उड़ान के लिए पर खोलने को तत्पर था। दो विश्व-युद्धों के मध्यांतर का यह काल राष्ट्रीय चेतना के उत्कर्ष का काल था। महाप्राण निराला 'परिमल' की भूमिका में लिखते हैं - 'इस समय के और पराधीन काल के काव्यानुशासनों को देखकर हम जाति की मानसिक स्थिति को भी देख ले सकते हैं। अनुशासन के समुदाय चारों तरफ से उसे जकड़े हुए हैं - साहित्य के साथ-साथ राज्य, धर्म, समाज, व्यवसाय सभी कुछ पराधीन हो गए हैं।' छायावादी कवियों ने इसी पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष को अपनी रचनाओं में स्वर दिया, क्योंकि पराधीनता मानसिक क्लेश को जन्म देती है और यही संघर्ष मुक्ति के संघर्ष के रूप में व्यक्त हुआ। उपेक्षितों-शोषितों की मुक्ति छायावाद की प्रमुख विषय-वस्तु बनी तो मुक्ति कामना महादेवी वर्मा जैसी महिला रचनाकार की आत्म-विस्तार की कामना का महत्वपूर्ण आधार बन गई। महादेवी में मुक्ति का सारा प्रयोजन ही लौकिक और मानवीय बनकर प्रस्तुत हुआ - 'तोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है! / जा रहे जिस पंथ से युग-कल्प उसका छोर क्या है!'

छायावाद का युग महात्मा गांधी की सक्रियता, किसान आंदोलन, प्रथम विश्व युद्धोत्तर स्थितियों, विश्व-व्यापी आर्थिक संकट, श्रमिक हड़तालों, अरविंद घोष, तिलक के विद्रोही तेवर आदि का काल था, जहाँ मुक्ति की छटपटाहट ने छायावादी काव्य में आकार ग्रहण किया। छायावाद ने प्रकृति के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण और तथाकथित नैतिक रूढ़ियों से मुक्ति का अलख जगाया। उसने रीतिकाल की सर्वथा भोगवादी प्रवृत्ति से मुक्ति चाही तो द्विवेदी युग की दुराग्रही भोग-विरोधी मानसिकता से भी छुटकारा चाहा। यहाँ तक कि छायावाद ने व्यावहारिक जीवन की भौतिकता और घोर सांसारिकता से मुक्ति पाने के प्रयास में एक नए रहस्यवाद की ही रचना कर डाली। महादेवी वर्मा इस नए छायावादी रहस्यवाद की प्रमुख प्रणेता रहीं।

डॉ.शशी मुदीराज ने उपर्युक्त विमर्श बिंदु की सटीक व्याख्या की है। उनके शब्दों में - 'महादेवी की रहस्यवादी अनुभूतियों में (इस) मुक्ति की तड़पन को सबसे अधिक देखा जा सकता है। महादेवी के लिए मुक्ति का प्रश्न देश और जाति का ही नहीं, स्वयं का भी है। इस जगह प्रसाद, पंत और निराला जैसे निस्संग और निरपेक्ष भाव से लिख सकते हैं वैसे महादेवी नहीं, क्योंकि वे नारी हैं। अनादि काल से पुरुष-शासित समाज में शोषित और पीड़ित नारी.....नई आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक लड़ाई ने स्त्री के अस्तित्व को उभार दिया। उस समय की नारी अपनी अस्मिता के लिए छटपटा रही थी। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि वह देश की मुक्ति में कहीं अपनी मुक्ति खोज रही थीं। वह इसके लिए सक्रिय संघर्ष कर रही थी। मुक्ति उसके लिए केंद्रीय प्रसंग थ। किंतु यह बात इतनी सीधी और सरल

नहीं है। मुक्ति के लिए संघर्ष - वह भी एक लंबे, पीड़न, प्रतारणा, अपमान और यंत्रणा के इतिहास से छूटने का संघर्ष कथ्य को सरल नहीं रहने देता। उसमें अवसाद, विवशता, पीड़ा, आत्म-पीड़न के साथ-साथ आत्माभिमान, अहंकार को छूता हुआ आत्माभिमान भी होगा।' यह आत्माभिमान महादेवी की रहस्यानुभूति का एक महत्वपूर्ण अंग है। महादेवी की कविताओं में इस आत्माभिमान के एकाधिक उदाहरण यहाँ देना प्रासंगिक होगा - (क) 'भिक्षुक से फिर जाओगे / जब लेकर यह अपना धन। / करुणामय तब समझोगे / इन प्राणों कां महंगापन।' (ख) 'चिंता क्या है निर्मम! / बुझ जाए दीपक मेरा, / हो जाएगा तेरा ही / पीड़ा का राज्य अंधेरा।'; और (ग) 'उनसे कैसे छोटा है / मेरा यह भिक्षुक जीवन! / उनमें अनन्त करुणा है / इसमें असीम सूनापन।'

यदि हम मुक्ति को अध्यात्म के स्तर पर देखें तो उसका अर्थ 'मोक्ष' होता है, अर्थात् इस जीव जगत में आवागमन के बंधनों से मुक्ति। किंतु, इस स्तर पर भी महादेवी ऐसी किसी मुक्ति की अभिलाषा नहीं करतीं जिसमें इस जगत के सौंदर्य से नाता टूट जाए। जिस मुक्ति का अर्थ जीवन-व्यापार का पूर्ण विराम है, उसकी तुलना में उनके लिए बंधन ही वरेण्य हैं। वह कहती हैं - 'क्यों मुझे प्रिय हो न बंधन! / बीन-बंदी तार की झंकार है आकाशचारी; / धूल के इस मलिन दीपक से बंधा है तिमिरहारी; / बांधती निर्बन्ध को मैं, / बन्दिनी निज बेड़ियाँ गिन।' वह अमरता वाली मुक्ति की जगह अवसाद, अपने मिटने के अधिकार का ही वरण करना चाहती हैं - 'ऐसा तेरा लोक, वेदना / नहीं, नहीं जिसमें अवसाद, / जलना जाना नहीं, नहीं / जिसने जाना मिटने का स्वाद। / क्या अमरों का लोक मिलेगा / तेरी करुणा का उपहार? / रहने दो हे देव! अरे / यह मेरा मिटने का अधिकार!' वह तो गर्वित हो यही कहती हैं - 'मुझे प्रिय जग अपना भाता है।' नारी चेतना, नारी मुक्ति के संदर्भ में महादेवी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं - 'बांध लेंगे क्या तुझे ये मोम के बंधन सजीले / पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले / विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुन गुन / क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल के दल ओस गीले / तू न अपनी छांह को अपने लिए कारा बनाना।'

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति के सभी चरण देखने को मिलते हैं। वह सर्वत्र एक विराट सत्ता के अस्तित्व का अभिज्ञान करती हैं। वह उससे मिलन की इच्छा रखती हैं, उसके प्रति समर्पण भाव दर्शाती हैं, उसके साथ तादात्म्य को तत्पर रहती हैं, वह परम सत्ता उन्हें अपनी विराट उपस्थिति से चकित करती है और उनमें कौतूहल और जिज्ञासा भी पैदा करती है। प्रकृति के विविध उपकरणों में वह उस अलौकिक प्रिय के अपार, अमिट सौंदर्य की कल्पना करती हैं। वह उसके साथ एकाकार होना भी चाहती हैं, और नारी सुलभ लज्जा और संकोच उनका साथ भी नहीं छोड़ते। वह विरह के ताप को भी झेलती हैं। उनकी रहस्यानुभूति उन्हें मानव समाज के उपेक्षित, शोषित वर्ग के कल्याण के प्रति भी सजग करती है। उनमें छायावादी युग की मुक्ति कामना और मुक्ति संघर्ष का तीव्र रूप भी मिलता है। नारी होने के नाते उनमें मुक्ति की तड़प अपेक्षाकृत अधिक गहन है। मुक्ति की यह आकांक्षा उनकी गद्य रचनाओं में तो प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त होती है, जबकि काव्य में इनकी परोक्ष किंतु स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। किंतु उनकी इच्छित यह 'मुक्ति' अध्यात्म का 'मोक्ष' नहीं है जहाँ जीव सदा-सदा के लिए भवसागर से पार हो जाता है। वह तो इसी लौकिक जगत में अपनी मुक्ति का आनंद लेना चाहती हैं। छायावादी रहस्यवाद का प्रसंग आता है तो निश्चय ही महादेवी वर्मा का उल्लेख अनिवार्य हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो - 'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में केवल महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं।'

महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति की उपर्युक्त विवेचना के उपसंहार में हमें यह स्पष्ट करके चलना होगा कि महादेवी का, और व्यापक स्तर पर छायावाद का, यह रहस्यवाद मध्ययुगीन संतों के रहस्यवाद से भिन्न था। छायावाद के काल में वेदांत दर्शन की नए सिरे से व्याख्या हुई, और इस नव्य वेदांत की आभा को पश्चिमी जगत की वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति की चकाचौंध भी मिटा नहीं पाई। इसीलिए, छायावादी राष्ट्रीय जागरण में धार्मिक प्रतीक और तत्व महत्वपूर्ण भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। यह आध्यात्मिक धारा मध्यवर्गीय आदर्शवाद का पोषण करने वाली थी। यह वह काल था जब तिलक जैसे राष्ट्र-नेता गीता को कर्मयोग के रूप में ग्रहण कर रहे थे, अरविंद घोष जैसे आंदोलनकारी (1908 के बाद) रहस्य साधना की ओर मुड़ रहे थे और विवेकानंद जैसे आध्यात्मिक गुरु व्यावहारिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करने के प्रयास में अद्वैत दर्शन का सहारा लेकर समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। उनका यह दृष्टिकोण छायावादियों के व्यक्तिवाद के विरुद्ध जाता था, और उन्होंने अपनी रचनाओं में इसका दोहन किया। छायावादियों ने अपने युग के घोर भौतिकवाद के विरोध में खड़े होते हुए प्रकृति को एक विराट चेतन सत्ता के रूप में अंगीकार किया, और व्यक्ति को इस विराटता से मिलाने का सद्प्रयास किया। यही उनका रहस्यवाद जो मध्ययुगीन रहस्यवाद से स्पष्ट रूप से भिन्न था।

महादेवी वर्मा स्वयं कहती हैं - 'व्यापक चेतना से व्यष्टिगत चेतना की एकता की भावना ने पुरानी रहस्य प्रवृत्ति को नया रूप दिया।' (मेरे प्रिय निबंध / छायावाद)

महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति, अथवा छायावादी रहस्य भावना मध्ययुगीन सतों के रहस्यवाद से किस प्रकार भिन्न थी? इसका उत्तर यह है कि छायावादी रहस्यवाद मध्ययुगीन रहस्यवाद की तरह साम्प्रदायेक नहीं था। विवेकानंद ने तो स्पष्ट कह दिया था कि 'यह कहीं ज्यादा अच्छा है कि तर्क और युक्ति का अनुसरण करते हुए लोग अनीश्वरवादी बन जाएँ - बजाय इसके कि किसी के कहने मात्र से अंधों की तरह बीस करोड़ देवी-देवताओं को पूजने लगें।' उन्होंने यह भी कहा कि जब समस्त प्राणी एक ही परमात्मा के अंश हैं तो फिर यह ऊँच-नीच और छूआछूत क्यों है? यह सर्वथा भिन्न रूप था अद्वैत का, जिसका प्रभाव छायावादी कवियों ने ग्रहण किया। इसीलिए, उनका रहस्यवाद मध्ययुगीन संतों के रहस्यवाद की साम्प्रदायिकता से अछूता रह सका। सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में - 'मध्ययुगीन संतों की तरह छायावादी कवि आत्म-ब्रह्म और आत्म-परिष्कार की खोज में न जाकर विश्वात्मा तथा विश्व-जीवन की खोज की ओर अग्रसर हुए। (छायावाद : पुनर्मूल्यांकन / सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली) वास्तव में, छायावादी रहस्यवाद गूढ अर्थ में किसी विशेष वाद से निर्देशित नहीं होता, न ही इसमें मध्ययुगीन रहस्यवाद की साधना की वृत्ति थी; और छायावादी कवि किसी धार्मिक मतवाद से भी प्रेरित नहीं थे। 'अतएव' डॉ.शशी मुदीराज के शब्दों में 'छायावादी रहस्यवृत्ति को समझने के लिए इसे साम्प्रदायिक साधनापरक रहस्यवाद से अलगाना आवश्यक है, तभी इसकी यथार्थवादी मानवीय भूमिका को स्पष्ट किया जा सकेगा।'

इस तरह, हमने देखा कि महादेवी छायावादी रहस्यवाद की प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। उनमें रहस्यानुभूति के प्रत्येक चरण की अभिव्यक्ति मिलती है। वह प्रकृति-व्यापार में एक विराट सत्ता के दर्शन करती और उसके साथ रहस्यात्मक, रागात्मक संबंध स्थापित करने को आतुर रहती हैं। किंतु उन्हें यथार्थ विरोधी रहस्यलोक में ही रहे आना कभी स्वीकार नहीं हुआ। वह अपनी संवेदनाओं को शोषित-उपेक्षित वर्ग से जोड़कर चलीं। उन्होंने अपने युग की मुक्ति आकांक्षा को अपनी रहस्यानुभूति में स्थान दिया। यह मुक्ति उनके लिए नारी-मुक्ति भी थी। उनकी मुक्ति की अवधारणा इसी लोक में निर्बन्ध होने की है। महत्वपूर्ण बात यह है कि महादेवी की रहस्यानुभूति मध्ययुगीन संतों के रहस्यवाद से भिन्न है। महादेवी का रहस्यवाद मध्ययुगीन रहस्यवाद की तरह साम्प्रदायिक नहीं था, और उसके पीछे किसी धार्मिक मतवाद की प्रेरणा भी नहीं थी। यह 'साम्प्रदायिक साधनापरक रहस्यवाद' से अलग अनुभूति थी।

9.5 महादेवी की कविता में प्रणय की अनुभूति

प्रणय की अभिव्यक्ति को छायावादी कविता में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। कुछ आलोचक तो समूचे छायावादी काव्य को ही 'प्रेम काव्य' की संज्ञा देते हैं। छायावाद का काव्य भारतीय नारी के नवोत्थान का काव्य था, जब वह समाज में बराबरी का दर्जा पाने के लिए संघर्ष कर रही थी, अपने पारम्परिक रूढ़िगत बंधनों को तोड़ने का यत्न कर रही थी और पुरुष की व्यावहारिक सहचरी बनने की दिशा में अग्रसर हो रही थी। उधर पुरुष को भी यह लगने लगा था कि स्त्री को उसके विशुद्ध रूप में समझा जाना चाहिए। स्त्री-पुरुष संबंध इस युग में अपने लिए नए आयामों की खोज करता दिखाई देता है। युगीन संशय और द्वंद्व से प्रेम की अनुभूति भी अछूती नहीं रहती।

महादेवी वर्मा के काव्य में प्रेम एक मूल भाव के रूप में प्रकट हुआ है। उनका प्रेम अशरीरी है। यह करूणा से आप्लावित प्रेम है। अलौकिक दिव्य सत्ता के प्रति उनकी इस प्रणयानुभूति में दाम्पत्य प्रेम की झलक भी मिलती है, और लौकिक स्पर्श का आभास भी। महादेवी की कविता में व्यक्त प्रेम इसलिए भी विशिष्ट है, क्योंकि यह एक स्त्री की लेखनी से किया गया स्त्री-मनोभावों का चित्रण है। उनमें स्त्रियोचित लाज-संकोच है तो अपने युग की नवजागृत नारी का अहं भी है। वह विरह की आग में तपती हैं तो संयोग की छाँह से भी स्वयं को दूर नहीं रखना चाहतीं। इस प्रकार, उन्होंने प्रणय की विविध स्थितियों का भरपूर आनंद लेते हुए अपनी कविताओं में इनका गहन चित्रण किया है। यह प्रेम वासना-रहित प्रेम है जिसमें उदात्तता का भाव प्रचुरता से मिलता है। महादेवी ने प्रेम के मधुर रूप का चयन किया है। उनका प्रेम प्राकृतिक सौंदर्य से आप्रभावित है। इस संदर्भ में, उनका स्वप्न-द्रष्टा होना भी एक उल्लेखनीय विशेषता है। आइए, हम उनकी प्रणयानुभूति का व्यापक अध्ययन करें।

महादेवी वर्मा सहज प्रेम की सहज गायिका हैं। प्रणय उनकी कविता का मूल भाव है। उन्होंने प्रेम के मधुर रूप का चयन किया, क्योंकि माधुर्य को वह प्रेम का महत्वपूर्ण गुण मानती हैं। उनका कहना है -

'हृदय के अनेक रागात्मक संबधों में माधुर्यमूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुँच सकता है जो सब रेखाओं में रंग भर सके; सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्म-निवेदन को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके।' यहाँ छायावादी साहचर्य का भाव द्रष्टव्य है। मधुरता की इस अनुभूति के दर्शन उनकी कविताओं में अनेक स्थानों पर होते हैं। उदाहरणार्थ, ये पंक्तियाँ देखिए - 'अंधेरों से झरता स्मित पराग, / प्राणों में गूंजा नेह-राग, / सुख का बहता मलयज समीर! / धुल-धुल जाता यह हिम-दुराव, / गा-गा उठते चिर मूक भाव, / आली सिहर-सिहर उठता शरीर!'

महादेवी ने प्रकृति के उपकरणों में जिस सौंदर्य के दर्शन किए, उसी से उनकी प्रणयानुभूति का उद्भव हुआ और इसी विराट सौंदर्य के प्रति वह अपने प्रणयोद्गार व्यक्त करती रहीं। सौंदर्य तो प्रेम का प्रेरक होता ही है। फिर अपार, अथाह, असीम सौंदर्य किसके हृदय को प्रणय से उद्वेलित नहीं कर देगा? यह देखिए - 'चुभते ही तेरा अरुण बान / बहते कन-कन से फूट-फूट, / मधु के निर्झर से सजल गान! / इन कनक रश्मियों में अथाह / लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग / बुदबुद-से बह चलते अपार, / उसमें विहगों के मधुर राग।' वह इस मधुरता, इस अथाह सौंदर्य से प्रभावित तो अवश्य होती हैं और उनमें प्रणय भावना भी हिलोर मारती है, किंतु उन्हें यह आभास नहीं होता कि उनका यह इष्ट प्रेमी है कौन - 'कौन तुम मेरे हृदय में? / कौन मेरी कसक में नित / मधुरता भरता अलक्षित? / कौन प्यासे लोचनों में / घुमड़ घिर झरता अपरिचित?' किंतु, फिर वह यह भी कहती हैं - 'जो न प्रिय पहचान पाती, / किसलिए पावस नयन में, / प्राण में चातक बसाते, / दौड़ती क्यों प्रति शिरा में, / प्यास विद्युत सी तरल बन, / .....क्यों किसी के आगमन के, / शकुन स्पन्दन मैं मनाती?' यह संशय व्यक्तिगत है अथवा युगीन यह समझना कठिन नहीं है।

उनमें अपने इस अलौकिक प्रिय से मिलने की अति तीव्र इच्छा है। वह कहती हैं - 'जो तुम आ जाते एक बार! / कितनी करुणा, कितने संदेश / पथ में बिछ जाते बन पराग। / गाता प्राणों का तार-तार / अनुराग भरा उन्माद राग, / आँसू लेते वे पद पखार।' प्रिय से मिलने की आकांक्षा में वह शृंगार भी करती हैं - 'शशि के दर्पण में देख देख, / मैंने सुलझाए तिमिर-केश, / गूँथे चुन तारक-पारिजात, / अवगुंठन कर किरणें अशेष।' इसी प्रकार प्रणय के अनेकानेक मनोभावों के चित्रण उनकी कविताओं में भरे पड़े हैं। वहाँ स्त्री-सुलभ लाज-संकोच के भी दर्शन होते हैं - 'सरल तेरा मृदु हास, / अकारण यह शैशव का हास, / बन गया कब कैसे चुपचाप, / लाज-भीनी सी मृदु मुस्कान!' तो नारी के छायावाद युगीन अभिमानी रूप की अभिव्यंजना भी मिलती है - 'कब दिवस का अग्निशर / मेरी सजलता बेध पाया, / तारकों ने मुकुट बन / दिग्भ्रान्त कब मुझको बनाया? / ले गगन का दर्प रज में उतार सहज निखर चली मैं!'

महादेवी की कविता में रहस्य भावना की चर्चा में हम उनकी प्रणयानुभूति के अनेक चरणों के विषय में जान चुके हैं क्योंकि उन्होंने उस दिव्य-विराट पुरुष को अपना प्रेम-इष्ट मान कर उसके साथ माधुर्यमूलक रागात्मक संबंध की स्थापना की है। इसलिए उनकी प्रेमानुभूति और रहस्यानुभूति दोनों एक-दूसरे में रच-बस गई हैं। यह रागात्मक संबंध इतनी गहनता और प्रगाढ़ता लेकर उपस्थित होता है कि उसमें दाम्पत्य प्रेम का संकेत मिलता है, जो स्वयं में प्रणय की पूर्णता का ही द्योतक है। डॉ.रामकुमार वर्मा का इस संबंध में यह विचार है कि 'इस प्रेम की चरम अभिव्यक्ति दाम्पत्य प्रेम में है। अन्य प्रकार का प्रेम किसी न किसी परिस्थिति में अपूर्ण है।.....आत्म-समर्पण की भावना दाम्पत्य प्रेम में फलीभूत होती है.....इस प्रेम के आलोक में करुण से करुण, भावनाएँ भी एक अनिवर्चनीय उल्लास से ओत-प्रोत रहती हैं।' (आधुनिक कवि)

उपर्युक्त उल्लास के उदाहरण महादेवी की कविता में कम नहीं हैं। ऐसे दो उद्धरण हम यहाँ देखते हैं - (क) 'रोम-रोम में नन्दन पुलकित, / साँस-साँस में जीवन शत-शत, / स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित'; और (ख) 'इन श्वासों का इतिहास / आँकते युग बीते, / रोमों में भर भर पुलक / लौटते पल रीते।'

अन्य छायावादी कवियों के समान महादेवी वर्मा भी स्वप्न-द्रष्टा हैं। यथार्थ में मिलन न होने पर भी वह स्वप्न में अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति कर लेती हैं। उन्होंने स्वप्न के माध्यम से अनेक गीतों में अपनी प्रणयानुभूति को व्यक्त किया है। ऐसा ही एक उदाहरण देखिए - 'पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी / युग-युग की पहचान बन गया।' किंतु, वह सपनों के मिलन को भ्रम अथवा मिथ्या कल्पना नहीं मानतीं, उनके निकट सपने का मिलन भी यथार्थ है। वह कहती हैं - 'कैसे कहती हो सपना है, / अलि! उस मूक मिलन की बात? / भरे हुए अब तक फूलों में / मेरे आँसू उनके हास!'

प्रेम कितना भी गहन, तीव्र, प्रगाढ़, निश्छल और माधुर्यमूलक हो, विरह की अपरिहार्यता तो संभावित रहती ही है। संपूर्ण जीवन को 'विरह का जलजात' मान लेने वाली महादेवी ने निश्चय ही विरह की व्यथा को साक्षात् भोगा होगा। इस विचार के समर्थन में हम शचीरानी गुर्टू का यह कथन यहाँ उद्धृत करना चाहेंगे - ' यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत के लिए मचल रहा था और जीवन गगन के रक्ताभ पट पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों में धूमिलिका अस्पष्ट रेखाएँ-सी अंकित कर गई।' प्रसंगवश, महादेवी के दो काव्य संकलनों - 'नीहार' ; और 'नीरजा' में उनकी पूर्ण प्रणय कथा के संकेत मिलते हैं। हम चाहेंगे कि विद्यार्थी इन संकलनों को पढ़कर स्वयं इन संकेतों का अन्वेषण करें। यहाँ द्रष्टव्य है कि विरह की स्थिति वेदना को जन्म देती है। महादेवी की काव्य संवेदना पर केंद्रित इस इकाई में हम उनके वेदना भाव का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर चुके हैं। यहाँ हम रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन के साथ इस विमर्श का समापन करेंगे, जो उन्होंने महादेवी की विरह वेदना के संबंध में रखा है। रामचन्द्र शुक्ल के विचार में, विरह की 'इस वेदना को लेकर उन्होंने (महादेवी) हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है यह नहीं कहा जा सकता।' और, उधर नवल किशोर गौड़ लिखते हैं कि '.....जिसके विरह में वे (महादेवी) तिल-तिल कर जल रही हैं, उनका वह प्रियतम न तो भौतिक जगत का साकार व्यक्ति है और न परोक्ष सत्ता का सगुण स्वरूप - वह कुछ ऐसा अविज्ञेय और रहस्यपूर्ण है कि उसे निराकार परोक्ष सत्ता का प्रतीक मान लिया गया है।' किंतु, इस समस्त किंतु-परंतु के बावजूद हमें यह कहना ही होगा कि अनुभूतियों की बेईमानी अथवा कृत्रिमता के सहारे इतनी सुंदर तथा उदात्ततापूर्ण, व्यापक रचना सृष्टि संभव नहीं है। महादेवी की प्रणयानुभूति ने जो रचनाएँ दी हैं, वे निस्संदेह हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

इस प्रकार, हमने देखा कि प्रणय छायावादी कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है। महादेवी वर्मा के काव्य का यह एक मूल भाव है। महादेवी की कविता में प्रणय की सभी स्थितियों का चित्रण मिलता है। उनका प्रेम अशरीरी है, किंतु उसमें लौकिक प्रणय की अभिव्यंजना हुई है। उनके प्रणय का इष्ट वह दिव्य परम पुरुष है। उनके प्रेम का उद्‌गम प्रकृति में है, जिसके विराट सौंदर्य से प्रभावित हो वह उसकी ओर आकर्षित होती हैं और माधुर्यमूलक प्रेम में खो जाती हैं। वह आत्म-समर्पण भी करती हैं, और अपने अभिमान को भी तिरोहित नहीं करतीं। उनमें स्त्री-सुलभ लाज-संकोच भी है तो अपनी लघुता के प्रति गर्वानुभूति भी। विरह की वेदना में तो वह आकंठ डूबी हुई हैं। कुल मिलाकर उनका प्रणय व्यापार एक महारास का रूप ले लेता है और उसमें रहस्यात्मकता आ जाती है। उनकी कविताओं में प्रणय की अभिव्यंजना अनुपम और अनूठी है।

9.6 महादेवी की कविता में सौंदर्य चित्रण

उपर्युक्त अंशों में हमने महादेवी वर्मा की समग्र काव्य संवेदना, उनकी कविता में विद्यमान वेदना भाव, रहस्य भावना और प्रणयानुभूति जैसे तत्वों पर विचार किया। प्रस्तुत अंश में हम महादेवी वर्मा की कविता में सौंदर्य चित्रण की विशेषताओं को रेखांकित करेंगे। उनकी कविता में सौंदर्य के विविध रूपों का मनोहर चित्रण हुआ है। सौंदर्य भावना भी छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति थी। महादेवी ने न केवल इसे अंगीकार किया, अपितु अपने काव्य में इसे महत्वपूर्ण, चित्ताकर्षक रूपाकार देकर समाहित भी किया। उन्होंने सौंदर्य के सूक्ष्म रूप को प्रतिष्ठित और चित्रित किया है। उनकी सौंदर्य दृष्टि प्रकृति और मानव दोनों की ओर आकृष्ट होती है।

'सौंदर्य की उद्‌भाविका' महादेवी वर्मा सौंदर्य की अद्‌भुत चितेरी हैं। उन्होंने अखिल ब्रह्माण्ड में सौंदर्य के दर्शन किए हैं और इस अनुभूति से गुज़रते हुए उन्होंने इसके विविध रूपों का चित्रांकन अपनी लेखनी से किया है। उनका काव्य सौंदर्य की खान है और उनके गीतों में सौंदर्य के विविध रूपों की छवियाँ बिखरी पड़ी हैं। यहाँ उनकी सौंदर्यानुभूति की व्यापकता को समेटना संभव नहीं होगा और न ही यह हमारा अभीष्ट है। यहाँ हम महादेवी वर्मा के काव्य में प्राप्त उस विराट सत्ता, प्रकृति और नारी के सौंदर्य पर ही दृष्टिपात करेंगे।

महादेवी ने सर्वत्र एक विराट सत्ता के दर्शन किए हैं। इसी अरूप पुरुष का दिव्य सौंदर्य उन्हें आकृष्ट करता है और वे उसी के चिर-सौंदर्य से प्रभावित होकर उसका गुणगान करती हैं। यह सौंदर्य उन्हें प्रकृति के प्रत्येक उपकरण, प्रत्येक उपादान में दिखाई देता है। इसलिए प्रकृति की सुषमा का वर्णन

उनके संदर्भ में एक परम प्रिय के सौंदर्य का वर्णन ही है। इसीलिए उनकी सौंदर्यानुभूति में रहस्यात्मकता की उपस्थिति दिखाई देती है।

यहाँ प्रसंगवश हमें यह समझ लेना होगा कि छायावाद का जन्म जिन कारणों से हुआ उनमें एक प्रमुख कारण यह था कि छायावादी दृष्टि ने मनुष्य और प्रकृति के बीच औद्योगिक-व्यावसायिक संबंध का विरोध किया। मनुष्य की औद्योगिक वैज्ञानिक प्रगति को छायावाद ने प्रकृति पर मनुष्य की विजय घोषित करने का विरोध किया। प्रकृति के प्रति छायावादी दृष्टि, कौतूहल और रागात्मकता से भरी रही। स्वयं महादेवी कहती हैं - 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए, जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं।'

महादेवी क्योंकि प्रकृति के समस्त उपकरणों, समस्त व्यापारों में उस दिव्य सौंदर्य के ही दर्शन करती हैं, इसलिए उन्होंने प्रकृति के सभी उपादानों, सभी रूपों का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। यहँ हम कुछ उदाहरण देंगे, और विद्यार्थियों से आग्रह करेंगे कि वे महादेवी की कविताओं में प्रकृति-सौंदर्य चित्रण के अन्य उदाहरणों को खोजें और उनका आनंद लें :

क) 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से / आ वसन्त रजनी! /
तारकमय नव वेणी-बन्धन, / शीशफूल कर शशि का नूतन /
रश्मि वलय, सित घन अवगुंठन / मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी.....'

ख) 'दिशा का चंचल / परिमल अंचल
चित्रहार से बिखर पड़े ससि / जुगनू के लघु हीरक के कण!'

ग) 'विधु की चाँदी की थाली / मादक मकरंद भरी सी /
जिसमें उजियारी रातें / लुटती घुलती मिसरी सी।'

घ) 'हँस देता जब प्रात, सुनहरे / अंचल में बिखरा रोली।/
लहरों की बिछलन पर जब / मचली पड़ती किरणें भोलीं।/
तब कलियाँ चुपचाप उठा कर पल्लवों के घूंघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती हैं कितना मादक है संसार!

प्रकृति के उपर्युक्त मनोहर रूपों के अतिरिक्त महादेवी की कविताओं में हमें प्रकृति का उग्र, शुष्क रूप भी देखने को मिलता है :

क) 'घोर तम छाया चारों ओर, / घटाएँ घिर आईं घन घोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल, / हिले जाते हैं पर्वत-मूल,
गरजता सागर बारम्बार...'

ख) बह गई क्षितिज की रेखा / मिलती है कहीं न हेरे,
भूला सा मत्त समीरण / पागल-सा देता फेरे!'

ग) 'मर्मर का रोदन कहता है / कितना निष्ठुर है संसार?'

किंतु, महादेवी क्योंकि प्रकृति के प्रत्येक उपकरण, प्रत्येक रूप में उस दिव्य पुरुष के सौंदर्य के ही दर्शन करती हैं, इसलिए प्रकृति का कोई भी रूप उन्हें विचलित नहीं करता। उन्हीं के अनुसार - 'प्रकृति का शांत रूप जैसे मेरे हृदय में एक चंचल लय-सी भर देता है, उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशांत स्थिरता देता है। अस्थिर रौद्रता की प्रतिक्रिया ही संभवतः मेरी एकाग्रता का कारण रहती है- मेरे निकट आँधी, तूफान, बादल, समुद्र आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके चित्र अनायास बनते हैं और बना लेने पर स्थायी आनंद प्राप्त होता है।'

महादेवी ने अपनी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति और वेदनानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रकृति का सहारा लिया। जो कुछ वह सीधे-सीधे अप्रत्यक्ष रूप में नहीं कह सकती थीं, प्रकृति का आवरण ले लेने पर वही सब कुछ वह अत्यंत सहज, सरल ढंग से कह जाती हैं। कुछ उदाहरण देखिए :

क) 'उड़ उड़ कर जो धूल करेगी / मेघों का नभ में अभिषेक
अमिट रहेगी उसके अंचल / में मेरी पीड़ा की रेख।'

ख) 'चिर विरह-मिलन पुलिनों की / सरिता हो मेरा जीवन
प्रतिपल होता रहता हो / युग-कूलों का आलिंगन।'

ग) 'तुम्हें बाँध पाती सपने में / पावस घन सी उमड़ बिखरती
शरद निशा-सी नीरव घिरती।'

छायावादी कवियों के प्रकृति चित्रण की एक अनूठी विशेषता यह रही कि उन्होंने प्रकृति पर नारी रूप का आरोपण किया। वह चाहे प्रसाद हों, सुमित्रानंदन पंत, या फिर निराला - सभी प्रकृति की सुंदरता में किसी स्त्री स्वरूप की कल्पना करते हैं। निराला ने स्वीकार भी किया है कि 'कोमलता लाने के लिए स्त्री स्वरूप की कल्पना से बढ़ कर और कौन-सी कल्पना होगी।' महादेवी वर्मा भी इसका अपवाद नहीं हैं। बल्कि छायावाद युग में स्त्री की नव प्राप्त छवि और स्वतंत्रता से प्रेरित होकर, स्वयं स्त्री होने के नाते महादेवी ने नारी-मुक्ति की चेतना को कहीं अधिक सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। महादेवी ने जो रूपक बाँधे हैं, उनमें अधिकतर प्रकृति पर नारी रूप का आरोपण ही मिलता है - 'रूपसि तेरा घन केशपाश, / कंपित हैं तेरे सजल अंग, सिहरा सा तन है सद्यःस्नात। / भीगी अलकों के छोरों से चूती बूंदें कर विविध लास। / सौरभ भीना झीना गीला लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल। / चल अंचल से झर-झर झरते पथ में जुगनू के स्वर्ण।' एक और उदाहरण देखिए - 'चौंकी निद्रित रजनी अलसित / श्यामल पुलकित कंपित कर में / दमक उठे विद्युत के कंकण।' कुछ आलोचक 'सादृश्य' अथवा 'साम्य' (एनालॉजी) को छायावादी प्रकृति चित्रण की विशिष्टता मानते हैं। उपर्युक्त उद्धरणों में हम इसके उदाहरण देख सकते हैं।

इसके अतिरिक्त छायावादी सोच में नारी एक नए रूप में अवतरित हो रही थी। जैसा कि शकुन्तला सिंह ने लिखा है 'द्विवेदी काल की बहिष्कृत नारी अब तक करुण क्रन्दन ही कर रही थी। छायावाद के लिए वह तीव्र आकर्षण का केंद्र बन गई। छायावादी कवियों ने उस रूठी हुई देवी को मनाया तो ज़रुर, पर वे उसे अपने जीवन-मंदिर में प्रतिष्ठित न कर सके। वे उसे कल्पना के पंखों पर उड़ा कर लाए, और व्योम-कुंजों में ही उसके साथ विहार करने लगे। अतः उस अनिंद्य सुंदरी की हमें झाँकी ही मिल सकी; उसके स्वरूप, माँसल सौंदर्य के दर्शन हमें नहीं प्राप्त हुए। यदि वह कभी पृथ्वी पर उतरी भी तो नए वैभव और नूतन सौंदर्य से दीप्त होकर।' महादेवी ने भी स्त्री के आंतरिक सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण किया है। वह स्थूल चित्रांकन से बचती हैं। तदपि उनकी कविताओं में रूप को शब्द मिले हैं, उसके विभिन्न अंगों, विभिन्न भंगिमाओं का चित्रण हुआ है। वह वयःसंधि के विशिष्ट सौंदर्य का भी चित्रण करती हैं - 'सजनी तेरे दृग बाल / चकित से विस्मित से दृग बाल / आज खोए से आते लौट / कहाँ अपनी चंचलता हाट? / झुकी जातीं पलकें सुकुमार / कौन से नव रहस्य के भार ?' वह अबोध बाला को लोभी प्रेमी के बहकावे में आने पर झिड़कती भी हैं - 'पंकज कली!..... / किस मलय सुरभित अंक रह / आया विदेशी गंधवह? / उन्मुक्त उर अस्तित्व खो / क्यों तू उसे भुज भर मिली?' इन अंतिम पंक्तियों में सांकेतिकता के माध्यम से प्रणय के सांयोगिक सौंदर्य की झाँकी मिलती है।

इस प्रकार हमने देखा कि महादेवी सौंदर्य की उद्भाविका हैं। उनके काव्य में दिव्य पुरुष, प्रकृति, नारी के माध्यम से सौंदर्य को अभिव्यक्ति मिली है। उनकी कविताओं में चित्रित सौंदर्य स्थूल न होकर सूक्ष्म और आंतरिक सौंदर्य है।

9.7 सारांश

इस इकाई में हमने महादेवी की काव्य संवेदना से आपका परिचय करवाया। आपने देखा कि छायावाद की एक प्रतिनिधि हस्ताक्षर महादेवी वर्मा अपने युगीन यथार्थ से संवेदना के धरातल पर किस प्रकार प्रभावित होती हैं और अपने काव्य में इसे किस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं। हमने महादेवी की कविता में वेदना भाव पर चर्चा की और उसके विविध रूपों से साक्षात्कार भी किया। फिर हमने महादेवी की कविता में स्थान पाने वाली रहस्य भावना पर विमर्श किया और समझा कि वह छायावादी रहस्यवाद की प्रतिनिधि हस्ताक्षर क्यों कही जाती हैं। इस संदर्भ में हमने यह भी पढ़ा कि उन्होंने छायावाद युगीन

मुक्ति-आकांक्षा को किस प्रकार अपनी कविता में, अपनी रहस्यानुभूति में स्थान दिया। हमने यह भी समझा कि महादेवी का छायावादी रहस्यवाद किस प्रकार, मध्ययुगीन संतों के रहस्यवाद से भिन्न है, क्योंकि वह मध्ययुगीन रहस्यवाद की तरह किसी मतवाद अथवा साम्प्रदायिकता से प्रेरित होकर नहीं चलता। महादेवी की प्रणयानुभूति वाले अंश में हमने विराट पुरुष के प्रति महादेवी के माधुर्यमूलक प्रेम के दर्शन किए और उसके विविध रूपों को देखा। अंत में हमने महादेवी वर्मा की कविता में सौंदर्य चित्रण पर चर्चा की। हमने देखा कि उनके काव्य में दिव्य पुरुष, प्रकृति और नारी के माध्यम से सौंदर्य का चित्रण हुआ है। आशा है, इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके समक्ष महादेवी वर्मा की काव्य संवेदना का स्वरूप स्पष्ट हो गया होगा।

9.8 प्रश्न

1. महादेवी की प्रणयानुभूति की मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट करें।
2. 'वेदना महादेवी के काव्य का स्थायी भाव है।' इस कथन की व्याख्या करें।
3. महादेवी के काव्य में व्यक्त रहस्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करें।
4. 'महादेवी के काव्य में प्रकृति' विषय पर एक निबंध लिखें।